छाया

[कहानी-संग्रह]

जयशङ्कर प्रसाद

रत्नच्छाया व्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्तात्

मेघदूते

ग्रन्थ-संख्या	१७०
पंचम आवृत्ति	सं० २०२५ वि०
मूल्य	दो रुपये पचास पैसा
प्रकाशक तथा विक्रेता	भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद
मुद्रक	बी० आर० मेहता लीडर प्रेस, इलाहाबाद

विषय-सूची

जो
छाया
मानस-पट में
उदय होती
रहती
है,
उसकी
पवित्र
स्मृति
में
अंकित

श्रीयुत बाबू जयशंकर 'प्रसाद' जी हिन्दी के स्वनामधन्य सुकवि और यशोधन सुलेखक है। साहित्य–संसार में उनका शुभ नाम स्वतः देदीप्यमान हो रहा है। उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा और सुधामुखी लेखनी का प्रसाद पाकर हिन्दी विशेष गौरवान्वित हुई है।

कविता, नाटक, कहानी, इतिहास आदि अनेक क्षेत्रों में 'प्रसाद' जी की कीर्ति-लता लहलहा रही है। कविता और कहानी के क्षेत्र में तो उन्होंने अभिनय युगान्तर उपस्थित कर दिया है। नाटकों की रचना में भी वह अप्रतिम हैं। उनकी प्रायः सभी रचनाएँ बड़े उच्च कोटि की और अतुलनीय है।

'छाया' प्रसाद जी की सं० १९१२ से सं० १९१८ तक की लिखी कहानियों का संग्रह है। इन कहानियों का सर्व प्रथम प्रकाशन 'इन्दु' में हुआ था। इस पुस्तक के प्रथम संस्करण में केवल ५ कहानियाँ थीं। दूसरे संस्करण में इसमें ११ कहानियाँ संगृहीत की गयी थीं। तृतीय संस्करण में इन कहानियों का संस्कार भी लेखक ने किया; अतः ये अपने पूर्व रूप से कुछ भिन्न हो गयीं। आज भी प्रसाद-साहित्य के अध्ययन करने के लिए इन कहानियों को पढ़ना आवश्यक है। प्रसाद जी की शैली और भावना के विकास की सीढ़ी इन कहानियों से चढ़ी जा सकती है। इस महत्त्वपूर्ण संग्रह से हिन्दी के पाठक लाभ उठावेंगे।

—प्रकाशक

तानसेन

१

यह छोटा-सा सरोवर भी क्या ही सुन्दर है, सुहावने आम और जामुन के वृक्ष चारों ओर से इसे घेरे हुए है । दूर से देखने में यहाँ केवल एक बड़ा-सा वृक्षों का झुरमुट दिखाई देता है, पर इसका स्वच्छ जल अपने सौन्दर्य को ऊँचे ढूहों में छिपाये हुए है । कठोर-हृदया धरणी के वक्षस्थल में यह छोटा-सा करुणा-कुण्ड, बड़ी सावधानी से, प्रकृति ने छिपा रक्खा है ।

संध्या हो चली है । विहँग-कुल कोमल कल-रव करते हुए अपने-अपने नीड़ की ओर लौटने लगे हे । अन्धकार अपना आगमन सूचित कराता हुआ वृक्षों के ऊँचे टहनियों के कोमल किसलयों को धुँधले रंग का बना रहा है । पर सूर्य की अन्तिम किरणे अभी अपना स्थान नहीं छोड़ना चाहती है । वे हवा के झोकों से हटाई जाने पर भी अन्धकार के अधिकार का विरोध करती हुई सूर्यदेव की उँगलियों की तरह हिल रही है ।

संध्या हो गई । कोकिल बोल उठा । एक सुन्दर कोमल कण्ठ से निकली हुई रसीली तान ने उसे भी चुप कर दिया । मनोहर-स्वर-लहरी उस सरोवर-तीर से उठकर तट के सब वृक्षों को गुंजरित करने लगी । मधुर-मलयानिल-ताड़ित जल-लहरी उस स्वर के ताल पर नाचने लगी । हर-एक पत्ता ताल देने लगा । अद्भुत आनन्द का समावेश था । शान्ति का नैसर्गिक राज्य उस छोटी रमणीय भूमि में मानो जमकर बैठ गया था ।

यह आनन्द-कानन अपना मनोहर स्वरूप एक पथिक से छिपा न सका, क्योंकि वह प्यासा था । जल की उसे आवश्यकता थी । उसका घोड़ा, जो बड़ी शीघ्रता से आ रहा था, रुका, और वह

उतर पड़ा। पथिक बड़े वेग से अश्व से उतरा, पर वह भी स्तब्ध होकर खड़ा हो गया; क्योंकि उसको भी उसी स्वर-लहरी ने मंत्रमुग्ध फणी की तरह बना दिया। मृगया-शील पथिक क्लान्त था--वृक्ष के सहारे खड़ा हो गया। थोड़ी देर तक वह अपने को भूल गया। जब स्वर-लहरी ठहरी, तब उसकी निद्रा भी टूटी। युवक सारे श्रम को भूल गया, उसके अंग में एक अद्भुत स्फूर्ति मालूम हुई। वह, जहाँ से स्वर सुनाई पड़ता था, उसी ओर चला। जाकर देखा, एक युवक खड़ा होकर उस अन्धकार-रंजित जल की ओर देख रहा है।

पथिक ने उत्साह के साथ जाकर उस युवक के कन्धे को पकड़ कर हिलाया। युवक का ध्यान टूटा। उसने पलटकर देखा।

२

पथिक का वीर-वेश भी सुन्दर था। उसकी खड़ी मूंछे उसके स्वाभाविक गर्व को तनकर जता रही थीं। युवक को उसके इस असभ्य बर्ताव पर क्रोध तो आया, पर कुछ सोचकर वह चुप हो रहा। और, इधर पथिक ने सरल स्वर से एक छोटा-सा प्रश्न कर दिया--क्यों भई, तुम्हारा नाम क्या है?

युवक ने उत्तर दिया--रामप्रसाद।

पथिक--यहाँ कहाँ रहते हो? अगर बाहर के रहने वाले हो, तो चलो, हमारे घर पर आज ठहरो।

युवक कुछ न बोला, किन्तु उसने एक स्वीकार-सूचक इंगित किया। पथिक और युवक, दोनों, अश्व के समीप आये। पथिक ने उसकी लगाम हाथ में ले ली। दोनों पैदल ही सड़क की ओर बढ़े।

दोनों एक विशाल दुर्ग के फाटक पर पहुँचे और उसमें प्रवेश किया। द्वार के रक्षकों ने उठ कर आदर के साथ उस पथिक को

अभिवादन किया । एक ने बढ़कर घोड़ा थाम लिया । अब दोनों ने बड़े दालानों और अमराइयो को पार करके एक छोटे-से पाईं-बाग में प्रवेश किया ।

रामप्रसाद चकित था, उसे यह नहीं ज्ञात होता था कि वह किसके संग कहाँ जा रहा है। हाँ, यह उसे अवश्य प्रतीत हो गया कि यह पथिक इस दुर्ग का कोई प्रधान पुरुष है।

पाई-बाग में बीचोबीच एक चबूतरा था, जो संगमरमर का बना था । छोटी-छोटी सीढ़ियाँ चढ़कर दोनों उसपर पहुँचे । थोड़ी देर में एक दासी पानदान और दूसरी वारुणी की बोतल लिये हुए आ पहुँची ।

पथिक, जिसे अब हम पथिक न कहेंगे, ग्वालियर-दुर्ग का किलेदार था, मुगल-सम्राट् अकबर के सरदारों में से था । बिछे हुए पारसी कालीन पर मसनद के सहारे वह बैठ गया । दोनों दासियाँ फिर एक हुक्का ले आईं, और उसे रखकर मसनद के पीछे खड़ी होकर चँवर करने लगीं । एक ने रामप्रसाद की ओर बहुत बचाकर देखा ।

युवक सरदार ने थोड़ी-सी वारुणी ली । दो-चार गिलौरी पान को खाकर फिर वह हुक्का खींचने लगा । रामप्रसाद क्या करें; बैठे-बैठे सरदार का मुंह देख रहे थे । सरदार के ईरानी चेहरे पर वारुणी ने वार्निश का काम किया । उसका चेहरा चमक उठा । उत्साह से भरकर उसने कहा——रामप्रसाद, कुछ गावो । यह उस दासी की ओर देख रहे थे ।

२

रामप्रसाद, सरदार के साथ बहुत मिल गया । उसे अब कहीं भी रोक-टोक नहीं है । उसी पाईं-बाग में उसके रहने की जगह

है। अपनी खिचड़ी आँच पर चढ़ाकर प्रायः चबूतरे पर आकर गुन-गुनाया करता। ऐसा करने की उसे मनाही नहीं थी। सरदार भी कभी-कभी खड़े होकर बड़े प्रेम से उसे सुनते थे। किन्तु उस गुन-गुनाहट ने एक बड़ा बेढब कार्य किया। वह यह कि सरदार-महल की एक नवीना दासी, उस गुनगुनाहट की धुन में, कभी-कभी पान में चूना रखना भूल जाया करती थी, और कभी-कभी मालकिन के 'किताब' मांगने पर 'आफ़ताबा' ले जाकर बड़ी लज्जित होती थी। पर तो भी बरामदे में से उसे एक बार उस चबूतरे की ओर देखना ही पड़ता था।

रामप्रसाद को कुछ नहीं—वह जंगली जीव था। उसे इस छोटे-से उद्यान में रहना पसन्द नहीं था, पर क्या करे। उसने भी एक कौतुक सोच रक्खा था। जब उसके स्वर में मुग्ध होकर कोई अपने कार्य में च्युत हो जाता, तब उसे बड़ा आनन्द मिलता।

सरदार अपने कार्य में व्यस्त रहते थे। उन्हें संध्या को चबूतरे पर बैठकर रामप्रसाद के दो-एक गान सुनने का नशा हो गया था। जिस दिन गाना नहीं सुनते, उस दिन उनको वारुणी में नशा कम हो जाता—उनकी विचित्र दशा हो जाती थी। रामप्रसाद ने एक दिन अपने पूर्व-परिचित सरोवर पर जाने के लिये छुट्टी माँगी; मिल भी गई।

संध्या को सरदार चबूतरे पर नहीं बैठे, महल में चले गये। उनकी स्त्री ने कहा—आज आप उदास क्यों है?

सरदार—रामप्रसाद के गाने में मुझे बड़ा ही सुख मिलता है।

सरदार-पत्नी—क्या आपका रामप्रसाद इतना अच्छा गाता है जो उसके बिना आपको चैन नहीं? मेरी समझ में मेरी बाँदी उससे अच्छा गा सकती है।

सरदार—(हंसकर) भला ! उसका नाम क्या है ?

सरदार-पत्नी—वही, सौसन—जिसे मैं देहली से खरीदकर ले आई हूँ ।

सरदार—क्या खूब ! अजी, उसको तो मै रोज देखता हूँ । वह गाना जानती होती, तो क्या मै आज तक न सुन सकता !

सरदार-पत्नी—तो इसमें बहस की कोई जरूरत नहीं है । कल उसका और रामप्रसाद का सामना कराया जावे ।

सरदार—क्या हर्ज ।

४

आज उस छोटे-से उद्यान में अच्छी सजधज है । साज लेकर दासियाँ बजा रही हैं । 'सौसन' संकुचित होकर रामप्रसाद के सामने बैठी है। सरदार ने उसे गाने की आज्ञा दी । उसने गाना आरम्भ किया—

कहो री, जो कहिबे की होई ।
बिरह बिथा अन्तर की वेदन सो जाने जेहि होई ॥
ऐसे कठिन भये पिय प्यारे काहि सुनावों रोई ।
'सूरदास' सुखमूरि मनोहर लै जुगयो मन गोई ॥

कमनीय कामिनी-कण्ठ की प्रत्येक तान में ऐसी सुन्दरता थी कि सुननेवाले, बजानेवाले—सब चित्र लिखे-से हो गये । रामप्रसाद की विचित्र दशा थी, क्योंकि सौसन के स्वाभाविक भाव जो उसकी ओर देखकर होते थे—उसे मुग्ध किये हुए थे ।

रामप्रसाद गायक था, किन्तु रमणी-सुलभ भ्रू-भाव उसे नही आते थे । उसकी अन्तरात्मा ने उससे धीरे-से कहा कि 'सर्वस्व हार चुका !'

सरदार ने कहा—रामप्रसाद, तुम भी गावो । वह भी-एक अनिवार्य आकर्षण से—इच्छा न रहने पर भी, गाने लगा ।

हमारो हिरदय कुलिसहु जीत्यो ।
फटत न सखी अजहुँ उहि आसा बरिस दिवस पर बीत्यो ।।
हमहूँ समुझि पर्‌यो नीके करि यह आसा तनु रीत्यो ।
'सूरस्याम' दासी सुख सोवहु भयउ उभय मन चीत्यो ।।

सौसन के चेहरे पर गाने का भाव एकबारगी अरुणिमा में प्रगट हो गया। रामप्रसाद ने ऐसे करुण स्वर से इस पद को गाया कि दोनों मुग्ध हो गये ।

सरदार ने देखा कि मेरी जीत हुई । प्रसन्न होकर बोल उठा—रामप्रसाद, जो इच्छा हो, माँग लो ।

यह सुनकर सरदार-पत्नी के यहाँ से एक बाँदी आई और सौसन से बोली—बेगम ने कहा है कि तुम्हे भी जो माँगना हो, हमसे माँग लो ।

रामप्रसाद ने थोड़ी देर तक कुछ न कहा । जब दूसरी बार सरदार ने माँगने को कहा, तब उसका चेहरा कुछ अस्वाभाविक-सा हो उठा। वह विक्षिप्त स्वर से बोल उठा—यदि आप अपनी बात पर दृढ़ हों, तो 'सौसन' को मुझे दे दीजिये ।

उसी समय सौसन भी उस बाँदी से बोली—बेगम साहिब यदि कुछ मुझे देना चाहें, तो अपने दासीपन से मुझे मुक्त कर दें ।

बाँदी भीतर चली गई । सरदार चुप रह गये । बाँदी फिर आई और बोली—बेगम ने तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार की और यह हार दिया है ।

इतना कहकर उसने एक जड़ाऊ हार सौसन को पहना दिया ।

सरदार ने कहा—रामप्रसाद, आज से तुम 'तानसेन' हुए । यह सौसन भी तुम्हारी हुई; लेकिन धरम से इसके साथ ब्याह करो ।

तानसेन ने कहा—आज से हमारा धर्म 'प्रेम' है ।

चन्द्रा

१

चैत्र-कृष्णाष्टमी का चन्द्रमा अपना उज्ज्वल प्रकाश 'चन्द्रप्रभा' के निर्मल जल पर डाल रहा है। गिरि-श्रेणी के तरुवर अपने रंग को छोड़कर धवलित हो रहे हैं; कल-नादिनी समीर के संग धीरे-धीरे बह रही है। एक शिला-तल पर बैठी हुई कोल-कुमारी सुरीले स्वर से--'दरद-दिल काहि सुनाऊँ प्यारे ! दरद'...गा रही है।

गीत अधूरा ही है कि अकस्मात् एक कोल-युवक धीर-पद-संचालन करता हुआ उस रमणी के सम्मुख आकर खड़ा हो गया। उसे देखते ही रमणी की हृदय-तंत्री बज उठी। रमणी बाह्य-स्वर भूलकर आन्तरिक स्वर से सुमधुर संगीत गाने लगी और उठकर खड़ी हो गई। प्रणय के वेग को सहन न करके वर्षावारिपूरिता स्रोतस्विनी के समान कोल-कुमार के कंध-कूल से रमणी ने आलिंगन किया।

दोनों उसी शिला पर बैठ गये, और निर्निमेष सजल नेत्रों से परस्पर अवलोकन करने लगे। युवती ने कहा--तुम कैसे आये ?

युवक--जैसे तुमने बुलाया।

युवती--(हंसकर) हमने तुम्हें कब बुलाया ! और क्यों बुलाया !

युवक--गाकर बुलाया, और दरद सुनाने के लिये।

युवती--(दीर्घ निश्वास लेकर) कैसे क्या करूँ ! पिता ने तो उसी से विवाह करना निश्चय किया है।

युवक--(उत्तेजना से खड़ा होकर) तो जो कहो, मै करने के लिये प्रस्तुत हूँ।

युवती--(चन्द्रप्रभा की ओर दिखाकर) बस, यही शरण है।

युवक--तो हमारे लिए कौन दूसरा स्थान है ?

युवती--मै तो प्रस्तुत हूँ।

युवक--हम तुम्हारे पहले।

युवती ने कहा--तो चलो।

युवक ने मेघ-गर्जन-स्वर से कहा--चलो।

दोनों हाथ में हाथ मिलाकर पहाड़ी से उतरने लगे। दोनों उतरकर चन्द्रप्रभा के तट पर आये, और एक शिला पर खड़े हो गये। तब युवती ने कहा--अब बिदा !

युवक ने कहा--किससे ? मै तो तुम्हारे साथ--जब तक सृष्टि रहेगी तब तक--रहूँगा।

इतने ही में शाल-वृक्ष के नीचे एक छाया दिखाई पड़ी और वह इन्हीं दोनों की ओर आती हुई दिखाई देने लगी। दोनों ने चकित होकर देखा कि एक कोल खड़ा है। उसने गम्भीर स्वर से युवती से पूछा--चन्दा ! तू यहाँ क्यों आई ?

युवती--तुम पूछनेवाले कौन हो !

आगन्तुक युवक--मै तुम्हारा भावी पति 'रामू' हूँ।

युवती--मैं तुमसे ब्याह न करूँगी।

आ० यु०--फिर किससे तुम्हारा ब्याह होगा ?

युवती ने पहले के आये हुए युवक की ओर इंगित करके कहा--इन्हीं से।

आगन्तुक युवक से अब न सहा गया। घूमकर पूछा--क्यों हीरा ! तुम ब्याह करोगे ?

हीरा--तो इसमें तुम्हारा क्या तात्पर्य है ?

रामू--तुम्हें इससे अलग हो जाना चाहिये।

हीरा--क्यों, तुम कौन होते हो ?

रामू--हमारा इससे सम्बन्ध पक्का हो चुका है।

हीरा--पर जिससे सम्बन्ध होनेवाला है, वह सहमत हो

तब न !

रामू--क्यो चन्दा ! क्या कहती हो ?

चन्दा--मैं तुमसे ब्याह न करूँगा ।

रामू--तो हीरा से भी तुम ब्याह नहीं कर सकती !

चन्दा--क्यों ?

रामू--(हीरा से) अब हमारा तुम्हारा फैसला हो जाना चाहिये, क्योंकि एक म्यान में दो तलवारें नही रह सकतीं।

इतना कहकर हीरा के ऊपर झपटकर उसने अचानक छुरे का वार किया।

हीरा यद्यपि सचेत हो रहा था; पर उसको सम्हलने में विलम्ब हुआ, इससे घाव लग गया, और वह वृक्ष थाम कर बैठ गया । इतने में चन्दा जोर से क्रन्दन कर उठी--साथ ही एक वृद्ध भील आता हुआ दिखाई पड़ा।

२

युवती मुंह ढांपकर रो रही है, और युवक रक्ताक्त छूरा लिये, घृणा की दृष्टि से खड़े हुए, हीरा की ओर देख रहा है। विमल चन्द्रिका में चित्र की तरह वे दिखाई दे रहे है। वृद्ध को जब चन्दा ने देखा, तो और वेग से रोने लगी। उस दृश्य को देखते ही वृद्ध कोल-पति सब बात समझ गया, और रामू के समीप जाकर छूरा उसके हाथ से ले लिया, और आज्ञा के स्वर में कहा--तुम दोनों हीरा को उठाकर नदी के समीप ले चलो।

इतना कहकर वृद्ध उन सबों के साथ आकर नदी-तट पर जल के समीप खड़ा हो गया। रामू और चन्दा दोनों ने मिलकर उसके घाव को धोया और हीरा के मुंह पर छींटा दिया, जिससे उसकी मूर्छा दूर हुई। तब वृद्ध ने सब बातें हीरा से पूछीं; पूछ लेने पर

रामू से कहा—क्यों, यह सब ठीक है ?

रामू ने कहा—सब सत्य है।

वृद्ध—तो तुम अब चन्दा के योग्य नहीं हो, और यह छुरा भी—जिसे हमने तुम्हें दिया था—तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम शीघ्र ही हमारे जंगल से चले जाओ, नहीं तो हम तुम्हारा हाल महाराज से कह देंगे, और उसका क्या परिणाम होगा सो तुम स्वयं समझ सकते हो। (हीरा की ओर देखकर) बेटा! तुम्हारा घाव शीघ्र अच्छा हो जायगा, घबड़ाना नहीं, चन्दा तुम्हारी ही होगी।

यह सुनकर चन्दा और हीरा का मुख प्रसन्नता से चमकने लगा, पर हीरा ने लेटे-ही-लेटे हाथ जोड़कर कहा—पिता! एक बात कहनी है, यदि आपकी आज्ञा हो।

वृद्ध—हम समझ गये, बेटा! रामू विश्वासघाती है।

हीरा—नहीं पिता! अब वह ऐसा कार्य नहीं करेगा। आप क्षमा करेंगे, मै ऐसी आशा करता हूँ।

वृद्ध—जैसी तुम्हारी इच्छा।

कुछ दिन के बाद जब हीरा अच्छी प्रकार से आरोग्य हो गया, तब उसका ब्याह चन्दा से हो गया। रामू भी उस उत्सव में सम्मिलित हुआ, पर उसका बदन मलीन और चिन्तापूर्ण था। वृद्ध कुछ ही काल में अपना पद हीरा को सौंप स्वर्ग को सिधारा। हीरा और चन्दा सुख से विमल चाँदनी में बैठकर पहाड़ी झरनों का कल-नाद-मय आनन्द-संगीत सुनते थे।

अंशुमाली अपनी तीक्ष्ण किरणों से वन्य-देश को परितापित कर रहे हैं। मृग-सिंह एक स्थान पर बैठकर, छाया-सुख में अपने बैर-भाव को भूलकर, ऊँघ रहे हैं। चन्द्रप्रभा के तट पर पहाड़ी की

एक गुहा में जहाँ कि छतनार पेड़ों की छाया उष्ण वायु को भी शीतल कर देती है, हीरा और चन्दा बैठे है। हृदय के अनन्त विकास से उनका मुख प्रफुल्लित दिखाई पड़ता है। उन्हें वस्त्र के लिये वृक्षगण वल्कल देते है; भोजन के लिये प्याज-मेवा इत्यादि जंगली सुस्वादु फल, शीतल स्वच्छन्द पवन; निवास के लिये गिरि-गुहा; प्राकृतिक झरनों का शीतल जल उनके सब अभावों को दूर करता है, और सबल तथा स्वच्छन्द बनाने में ये सब सहायता देते है। उन्हें किसी की अपेक्षा नहीं करनी पड़ती। अस्तु, उन्हीं सब सुखों से आनंदित व्यक्तिद्वय 'चन्द्रप्रभा' के जल का कल-नाद सुनकर अपनी हृदय-वीणा को बजाते है।

चन्दा—प्रिय ! आज उदासीन क्यों हो !

हीरा—नहीं तो, मै यह सोच रहा हूँ कि इस वन में राजा आनेवाले हैं। हमलोग यद्यपि अधीन नहीं है, तो भी उन्हें शिकार खेलाया जाता है, और इसमें हम लोगों की कुछ हानि भी नहीं है। उसके प्रतिकार में हम लोगों को कुछ मिलता है, पर आजकल इस बन में जानवर दिखाई नहीं पड़ते। इसलिये सोचता हूँ कि कोई शेर या छोटा चीता भी मिल जाता तो कार्य हो जाता।

चन्दा—खोज किया था ?

हीरा—हाँ, आदमी तो गया है।

इतने में एक कोल दौड़ता हुआ आया, और कहा—राजा आ गये हैं और तहखाने में बैठे है। एक तेंदुवा भी दिखाई दिया है।

हीरा का मुख प्रसन्नता से चमकने लगा, और वह अपना कुल्हाड़ा सम्हालकर उस आगन्तुक के साथ वहाँ पहुँचा, जहाँ शिकार का आयोजन हो चुका था

राजा साहब झंझरी में बन्दूक की नाल रखे हुए ताक रहे है।

एक ओर से बाजा बज उठा। एक चीता भागता हुआ सामने से निकला। राजा साहब ने उस पर वार किया। गोली लगी, पर चमड़े को छेदती हुई पार हो गई; इससे वह जानवर भागकर निकल गया। अब तो राजा साहब बहुत ही दुःखित हुए। हीरा को बुलाकर कहा—क्यों जी, यह जानवर नहीं मिलेगा?

उस वीर कोल ने कहा—क्यों नही?

इतना कहकर वह उसी ओर चला। झाड़ी में जहाँ वह चीता घाव से व्याकुल बैठा हुआ था, वहाँ पहुँचकर उसने देखना आरम्भ किया। क्रोध से भरा हुआ चीता उस कोल-युवक को देखते ही झपटा। युवक असावधानी के कारण वार न कर सका, पर दोनों हाथों से उस भयानक जन्तु की गर्दन को पकड़ लिया, और उसने भी इसके कंधे पर अपने दोनों पंजों को जमा दिया।

दोनों में बल-प्रयोग होने लगा। थोड़ी देर में दोनों जमीन पर लेट गये।

यह बात राजा साहब को विदित हुई। उन्होंने उसकी मदद के लिए कोलों को जाने की आज्ञा दी। रामू उस अवसर पर था। उसने सबके पहले जाने के लिए पैर बढ़ाया, और चला। वहाँ जब पहुँचा, तो उस दृश्य को देखकर घबड़ा गया, और हीरा से कहा—हाथ ढीला कर; जब यह छोड़ने लगे, तब गोली मारूँ, नहीं तो सम्भव है कि तुम्हीं को लग जाय।

हीरा—नहीं, तुम गोली मारो।

रामू—तुम छोड़ो तो मै वार करूँ।

हीरा—नहीं, यह अच्छा नहीं होगा।

रामू—तुम उसे छोड़ो, मै अभी मारता हूँ।

हीरा—नहीं, तुम वार करो।

रामू--वार करने से सम्भव है कि उछले और तुम्हारे हाथ छूट जायँ, तो तुमको यह तोड़ डालेगा।

हीरा--नहीं, तुम मार लो, मेरा हाथ ढीला हुआ जाता है।

रामू--तुम हठ करते हो, मानते नहीं।

इतने में हीरा का हाथ कुछ बात-चीत करते-करते ढीला पड़ा; वह चीता उछलकर हीरा की कमर को पकड़कर तोड़ने लगा।

रामू खड़ा होकर देख रहा है, और पैशाचिक आकृति उस घृणित पशु के मुख पर लक्षित हो रही है, और वह हँस रहा है।

हीरा टूटी हुई साँस से कहने लगा--अब भी मार ले।

रामू ने कहा--अब तू मर ले, तब वह भी मारा जायगा। तूने हमारा हृदय निकाल लिया है, तूने हमारा घोर अपमान किया है, उसी का प्रतिफल है। इसे भोग।

हीरा को चीता खाये डालता है; पर उसने कहा--नीच! तू जानता है कि 'चन्दा' अब मेरी होगी। कभी नहीं! तू नीच है--इस चीते से भी भयंकर जानवर है।

रामू ने पैशाचिक हँसी हँसकर कहा--चन्दा अब तेरी तो नहीं है, अब वह चाहे जिसकी हो!

हीरा ने टूटी हुई आवाज से कहा--तुझे इस विश्वासघात का फल शीघ्र मिलेगा और चन्दा फिर हमसे मिलेगी। चन्दा... प्यारी...च...

इतना उसके मुख से निकला ही था कि चीते ने उसका सिर दांतों के तले दाव लिया। रामू देखकर पैशाचिक हँसी हँस रहा था। हीरा के समाप्त हो जाने पर रामू लौट आया, और झूठी बातें बनाकर राजा से कहा कि उसको हमारे जाने के पहले ही चीता ने मार लिया।

राजा बहुत दुःखी हुए, और जंगल की सर्दारी रामू को मिली।

५

वसन्त की राका चारों ओर अनूठा दृश्य दिखा रही है। चन्द्रमा न मालूम किस लक्ष्य की ओर दौड़ा चला जा रहा है; कुछ पूछने से भी नहीं बताता। कुटज की कली का परिमल लिये पवन भी न मालूम कहाँ दौड़ रहा है; उसका भी कुछ समझ नहीं पड़ता। उसी तरह, चन्द्रप्रभा के तीर पर बैठी हुई कोल-कुमारी का कोमल कण्ठ-स्वर भी किस धुन में है—नहीं ज्ञात होता।

अकस्मात् गोली के आवाज ने उसे चौंका दिया। गाने के समय जो उसका मुख उद्वेग और करुणा से पूर्ण दिखाई पड़ता था, वह घृणा और क्रोध से रंजित हो गया, और वह उठकर पुच्छमर्दिता सिंहनी के समान तनकर खड़ी हो गई, और धीरे से कहा—यही समय है। ज्ञात होता है, राजा इस समय शिकार खेलने पुनः आ गये है—बस वह अपने वस्त्र को ठीक करके कोल-बालक बन गई, और कमर में से एक चमचमाता हुआ छूरा निकालकर चूमा। वह चाँदनी में चमकने लगा। फिर वह कहने लगी—यद्यपि तुमने हीरा का रक्तपान कर लिया है, लेकिन पिता ने रामू से तुम्हें ले लिया है। अब तुम हमारे हाथ में हो, तुम्हें आज रामू का भी खून पीना होगा।

इतना कहकर वह गोली के शब्द की ओर लक्ष्य करके चली। देखा कि तहखाने में राजा साहब बैठे है। शेर को गोली लग चुकी है, और वह भाग गया है, उसका पता नहीं लग रहा है, रामू सर्दार है, अतएव उसको खोजने के लिये आज्ञा हुई, वह शीघ्र ही सन्नद्ध हुआ। राजा ने कहा—कोई साथी लेते जाओ।

पहले तो उसने अस्वीकार किया, पर जब एक कोल-युवक स्वयं साथ

चलने को तैयार हुआ, तो वह नहीं भी न कर सका, और सीधे--जिधर शेर गया था, उसी ओर चला। कोल-बालक भी उसके पीछे है। वहाँ घाव से व्याकुल शेर चिग्घाड़ रहा है, इसने जाते ही ललकारा। उसने तत्काल ही निकलकर वार किया। रामू कम साहसी नहीं था, उसने उसके खुले हुए मुंह में निर्भीक होकर बन्दूक की नाल डाल दी; पर उसके जरा-सा मुंह घुमा लेने से गोली चमड़ा छेदकर पार निकल गई, और शेर ने क्रुद्ध होकर दांत से बन्दूक की नाल दबा ली। अब दोनों एक दूसरे को ढकेलने लगे; पर कोल-बालक चुपचाप खड़ा है। रामू ने कहा--मार, अब देखता क्या है!

युवक--तुम इससे बहुत अच्छी तरह लड़ रहे हो।

रामू--मारता क्यों नहीं?

युवक--इसी तरह शायद हीरा से भी लड़ाई हुई थी, क्या तुम नहीं लड़ सकते?

रामू--कौन, चन्दा! तुम हो? आह, शीघ्र मारो, नहीं तो अब यह सबल हो रहा है।

चन्दा ने कहा--हाँ, लो, मै मारती हूँ, इसी छूरे से हमारे सामने तुमने हीरा को मारा था, यह वही छूरा है, यह तुझे दुःख से निश्चय ही छुड़ावेगा--इतना कहकर चन्दा ने रामू की बगल में छूरा उतार दिया। वह छटपटाया। इतने ही में शेर को मौका मिला, वह भी रामू पर टूट पड़ा और उसका इति कर आप भी वहीं गिर पड़ा।

चन्दा ने अपना छूरा निकाल लिया, और उसको चाँदनी में रंगा हुआ देखने लगी, फिर खिलखिलाकर हँसी और कहा,--'दरद दिल काहि सुनाऊँ प्यारे'! फिर हँसकर कहा--हीरा! तुम देखते होगे, पर अब तो यह छूरा ही दिल की दाह सुनेगा। इतना

कहकर अपनी छाती में उसे भोंक लिया और उसी जगह गिर गई, और कहने लगी-हीरा...हम...तुमसे...मिले ही.....

चन्द्रमा अपने मन्द प्रकाश में यह सब देख रहा था ।

ग्राम

१

टन ! टन ! टन ! स्टेशन पर घंटी बोली।

श्रावण-मास की सन्ध्या भी कैसी मनोहारिणी होती है ! मेघ-माला-विभूषित गगन की छाया सघन रसाल-कानन में पड़ रही है ! अंधियारी धीरे-धीरे अपना अधिकार पूर्व-गगन में जमाती हुई, सुशासन-कारिणी महाराणी के समान, विहंगप्रजागण को सुखनिकेतन में शयन करने की आज्ञा दे रही है। आकाशरूपी शासन-पत्र पर प्रकृति के हस्ताक्षर के समान बिजली की रेखा दिखाई पड़ती है......ग्राम्य स्टेशन पर कहीं एक-दो दीपालोक दिखाई पड़ता है। पवन हरे-हरे निकुंजों में से भ्रमण करता हुआ झिल्ली के झनकार के साथ भरी हुई झीलों में लहरों के साथ खेल रहा है। बूंदियाँ धीरे-धीरे गिर रही है, जो जूही की कलियों को आर्द्र करके पवन को भी शीतल कर रही हैं।

थोड़े समय में वर्षा बन्द हो गई। अन्धकार-रूपी अंजन के अग्रभागस्थित आलोक के समान चतुर्दशी की लालिमा को लिये हुए चन्द्रदेव प्राची में हरे-हरे तरुवरों की आड़ में से अपनी किरण-प्रभा दिखाने लगे। पवन की सनसनाहट के साथ रेलगाड़ी का शब्द सुनाई पड़ने लगा। सिग्नलर ने अपना कार्य किया। घंटा का शब्द उस हरे-भरे मैदान में गूंजने लगा। यात्री लोग अपनी गठरी बांधते हुए स्टेशन पर पहुँचे। महादैत्य के लाल-लाल नेत्रों के समान अन्जन-गिरिनिभ इन्जिन का अग्रस्थित रक्त-आलोक दिखाई देने लगा। पागलों के समान बड़बड़ाती हुई अपनी धुन की पक्की रेलगाड़ी स्टेशन पर पहुँच गई। धड़ाधड़ यात्री लोग उतरने-चढ़ने लगे। एक स्त्री की ओर देखकर फाटक के बाहर खड़ी हुई दो औरतें--जो उसकी सहेली मालूम देती

हैं--रो रही हैं, और वह स्त्री एक मनुष्य के साथ रेल में बैठने को उद्यत है। उनकी क्रन्दन-ध्वनि से वह स्त्री दीन भाव से उनकी ओर देखती हुई, बिना समझे हुए, सेकंड क्लास की गाड़ी में चढ़ने लगी; पर उसमें बैठे हुए बाबू साहब--'यह दूसरा दर्जा है, इसमें मत चढ़ो' कहते हुए उतर पड़े, और अपना हंटर घुमाते हुए स्टेशन से बाहर होने का उद्योग करने लगे।

विलायती पिक का बृचिस पहने, बूट चढ़ाये, हंटिंग कोट, धानी रंग का साफा, अंग्रजी हिन्दुस्तानी का महासम्मेलन बाबू साहब के अंग पर दिखाई पड़ रहा है। गौर वर्ण, उन्नत ललाट-उसकी आभा को बढ़ा रहे हैं। स्टेशन मास्टर से सामना होते ही शेकहैण्ड करने के उपरान्त बाबू साहब से बातचीत होने लगी।

स्टे० मा०--आप इस वक्त कहाँ से आ रहे है ?

मोहन०--कारिन्दों ने इलाके में बड़ा गड़बड़ मचा रक्खा है, इसलिये मै कुसुमपुर--जो कि हमारा इलाका है--इन्स्पेक्शन के लिए जा रहा हूँ।

स्टे० मा०--फिर कब पलटियेगा ?

मोहन०--दो रोज में। अच्छा, गुड इवनिंग !

स्टेशन मास्टर, जो लाइन-क्लियर दे चुके थे, गुड इवनिंग करते हुए अपने आफिस में घुस गये।

बाबू मोहनलाल अंग्रेजी काठी से सजे हुए घोड़े पर, जो पूर्व ही से स्टेशन पर खड़ा था, सवार होकर चलते हुए।

सरलस्वभावा ग्रामवासिनी कुलकामिनीगण का सुमधुर संगीत धीरे-धीरे आम्र-कानन में से निकलकर चारों ओर गूंज रहा है। अन्धकार-गगन में जुगनू-तारे चमक-चमककर चित्त को चञ्चल कर रहे

हैं। ग्रामीण लोग अपना हल कन्धे पर रक्खे, बिरहा गाते हुए, बैलों की जोड़ी के साथ, घर की ओर प्रत्यावर्त्तन कर रहे है ।

एक विशाल तरुवर की शाखा में झूला पड़ा हुआ है, उसपर चार महिलाएं बैठी है, और पचासों उसको घेरकर गाती हुई घूम रही है । झूला के पेंग के साथ 'अबकी सावन सइयाँ घर रहुरे' की सुरीली पचासों कोकिल-कण्ठ से निकली हुई तान पशुगणों को भी मोहित कर रही है । बालिकाएं स्वच्छन्द भाव से क्रीड़ा कर रही हैं । अकस्मात् अश्व के पद-शब्द ने उन सरला कामिनियों को चौंका दिया । वे सब देखती है तो हमारे पूर्व-परिचित बाबू मोहनलाल घोड़े को रोककर उस पर से उतर रहे है । वे सब उनका भेष देखकर घबड़ा गयीं और आपस में कुछ इंगित करके चुप रह गयीं।

बाबू मोहनलाल ने निस्तब्धता को भंग किया, और बोले ! भद्रे—यहाँ से कुसुमपुर कितनी दूर है ? और किधर से जाना होगा ? एक प्रौढ़ा ने सोचा कि 'भद्रे' कोई परिहास-शब्द तो नहीं है, पर वह कुछ कह न सकी, केवल एक ओर दिखाकर बोली—इहाँ से डेढ़ कोस तो बाय, इहै पैड़वा जाई ।

बाबू मोहनलाल उसी पगडंडी से चले। चलते-चलते उन्हें भ्रम हो गया, और वह अपनी छावनी का पथ छोड़कर दूसरे मार्ग से जाने लगे । मेघ घिर आये, जल वेग से बरसने लगा, अन्धकार और घना हो गया । भटकते-भटकते वह एक खेत के समीप पहुंचे; वहाँ उस हरे-भरे खेत में एक ऊँचा और बड़ा मचान था जो कि फूस से छाया हुआ था, और समीप ही में एक छोटा-सा कच्चा मकान था ।

उस मचान पर बालक और बालिकाएं बैठी हुई कोलाहल मचा रही थीं । जल में भीगते हुए भी मोहनलाल खेत के समीप खड़े होकर उनके आनन्द-कलरव को श्रवण करने लगे ।

भ्रान्त होने से उन्हें बहुत समय व्यतीत हो गया। रात्रि अधिक बीत गयी। कहाँ ठहरें? इसी विचार में वह खड़े रहे, बूंदे कम हो गयीं। इतने में एक बालिका अपने मलिन वसन के अंचल की आड़ में दीप लिये हुए उसी मचान की ओर जाती हुई दिखाई पड़ी।

बालिका की अवस्था १५ वर्ष की है। आलोक से उसका अंग अन्धकार-घन में विद्युल्लेखा की तरह चमक रहा था। यद्यपि दरिद्रता ने उसे मलिन कर रक्खा है, पर ईश्वरीय सुषमा उसके कोमल अंग पर अपना निवास किये हुए है। मोहनलाल ने घोड़ा बढ़ाकर उससे कुछ पूछना चाहा, पर संकुचित होकर ठिठक गये। परन्तु पूछने के अतिरिक्त दूसरा उपाय ही नहीं था। अस्तु, रूखेपन के साथ पूछा--कुसुमपुर का रास्ता किधर है?

बालिका इस भव्य मूर्ति को देखकर डरी, पर साहस के साथ बोली--मै नहीं जानती। ऐसे सरल नत्र-संचालन से इंगित करके उसने यह शब्द कहा कि युवक को क्रोध के स्थान में हँसी आ गयी और कहने लगा--तो जो जानता हो, मुझे बतलाओ, मै उससे पूछ लूँगा।

बालिका--हमारी माता जानती होंगी।

मोहन०--इस समय तुम कहाँ जाती हो?

बालिका--(मचान की ओर दिखाकर) वहाँ जो कई लड़के हैं, उनमें से एक हमारा भाई है, उसी को खिलाने जाती हूँ।

मोहन०--बालक इतनी रात को खेत में क्यों बैठा है?

बालिका--वह रात-भर और लड़कों के साथ खेत ही में रहता है।

मोहन०--तुम्हारी माँ कहाँ है?

बालिका--चलिये, मै लिवा चलती हूँ।

इतना कहकर बालिका अपने भाई के पास गयी, और उसको खिला-

कर तथा उसके पास बैठे हुए लड़कों को भी कुछ देकर उसी क्षुद्र-कुटीराभिमुख गमन करने लगी। मोहनलाल उस सरला बालिका के पीछे चले।

४

उस क्षुद्र कुटीर में पहुँचने पर एक स्त्री मोहनलाल को दिखाई पड़ी जिसकी अंगप्रभा स्वर्ण-तुल्य थी, तेजोमय मुखमंडल, तथा ईषत् उन्नत अधर अभिमान से भरे हुए थे, अवस्था उसकी ५० वर्ष से अधिक थी। मोहनलाल की आन्तरिक अवस्था, जो ग्राम्यजीवन देखने से कुछ बदल चुकी थी, उस सरल गम्भीर तेजोमय मूर्ति को देख और भी सरल विनय-युक्त हो गयी। उसने झुककर प्रणाम किया। स्त्री ने आशीर्वाद दिया और पूछा—बेटा ! कहाँ से आते हो ?

मोहन०—मैं कुसुमपुर जाता था, किन्तु रास्ता भूल गया... ।

'कुसुमपुर' का नाम सुनते ही स्त्री का मुख-मंडल आरक्तिम हो गया और उसके नेत्र से दो बूंद आँसू निकल आये। वे अश्रु करुणा के नहीं, किन्तु अभिमान के थे।

मोहनलाल आश्चर्यान्वित होकर देख रहे थे। उन्होंने पूछा—आपको कुसुमपुर के नाम से क्षोभ क्यों हुआ ?

स्त्री—बेटा ! उसकी बड़ी कथा है, तुम सुनकर क्या करोगे !

मोहन०—नहीं, मैं सुनना चाहता हूं, यदि आप कृपा करके सुनावें।

स्त्री—अच्छा, कुछ जलपान कर लो, तब सुनाऊँगी।

पुनः बालिका की ओर देखकर स्त्री ने कहा—कुछ जल पीने को ले आओ।

आज्ञा पाते ही बालिका उस क्षुद्र गृह के एक मिट्टी के बर्तन में से कुछ वस्तु निकाल, उसे एक पात्र में घोलकर ले आयी, और मोहनलाल

के सामने रख दिया। मोहनलाल उस शर्बत को पान करके फूस की चटाई पर बैठकर स्त्री की कथा सुनने लगे।

५

स्त्री कहने लगी--हमारे पति इस प्रान्त के गण्य भूस्वामी थे, और वंश भी हमलोगों का बहुत उच्च था। जिस गाँव का अभी आपने नाम लिया है, वही हमारे पति की प्रधान जमींदारी थी। कार्यवश एक कुन्दनलाल नामक महाजन से कुछ ऋण लिया गया। कुछ भी विचार न करने से उनका बहुत रुपया बढ़ गया, और जब ऐसी अवस्था पहुंची तो अनेक उपाय करके हमारे पति धन जुटाकर उनके पास ले गये, तब उस धूर्त ने कहा--"क्या हर्ज है बाबू साहब! आप आठ रोज में आना, हम रुपया ले लेंगे, और जो घाटा होगा, उसे छोड़ देंगे, आपकाइलाका फिर जायगा, इस समय रेहननामा भी नहीं मिल रहा है।" उसका विश्वास करके हमारे पति फिर बैठ रहे, और उसने कुछ भी न पूछा। उनकी उदारता के कारण वह संचित धन भी थोड़ा हो गया, और उधर उसने दावा करके इलाका--जो कि वह ले लेना चाहता था--बहुत थोड़े रुपये में नीलाम करा लिया। फिर हमारे पति के हृदय में, उस इलाका के इस भांति निकल जाने के कारण, बहुत चोट पहुंची और इसी से उनकी मृत्यु हो गयी। इस दशा के होने के उपरान्त हम लोग इस दूसरे गाँव में आकर रहने लगीं। यहाँ के जमींदार बहुत धर्मात्मा हैं, उन्होंने कुछ सामान्य 'कर' पर यह भूमि दी है, इसी से अब हमारी जीविका है।...

इतना कहते-कहते स्त्री का गला अभिमान से भर आया, और कुछ कह न सकी।

स्त्री की कथा को सुनकर मोहनलाल को बड़ा दुःख हुआ। रात विशेष बीत चुकी थी, अतः रात्रि-यापन करके, प्रभात में मलिन तथा पश्चिमगामी चन्द्र का अनुसरण करके, बताये हुए पथ से वह चले गये।

पर उनके मुख पर विषाद तथा लज्जा ने अधिकार कर लिया था।

कारण यह था कि स्त्री की जमींदारी हरण करनेवाले, तथा उसके प्राण-प्रिय पति से उसे विच्छेद कराकर इस भांति दुःख देनेवाले कुन्दनलाल मोहनलाल के ही पिता थे ।

रसिया बालम

१

संसार को शान्तिमय करने के लिए रजनी देवी ने अभी अपना अधिकार पूर्णतः नहीं प्राप्त किया है। अंशुमाली अभी अपने आधे बिम्ब को प्रतीची में दिखा रहे हैं। केवल एक मनुष्य अर्बुद-गिरि-सुदृढ़ दुर्ग के नीचे एक झरने के तट पर बैठा हुआ उस अर्ध-स्वर्ण पिंड की ओर देखता है। और कभी-कभी दुर्ग के ऊपर राजमहल की खिड़की की ओर भी देख लेता है, फिर कुछ गुनगुनाने लगता है।

घंटों उसे वैसे ही बैठे बीत गये। कोई कार्य नहीं, केवल उसे उस खिड़की की ओर देखना। अकस्मात् एक उजाले की प्रभा उस नीची पहाड़ी भूमि पर पड़ी और साथ ही किसी वस्तु का शब्द भी हुआ, परन्तु उस युवक का ध्यान उस ओर नहीं था। वह तो केवल उस खिड़की में के उस सुन्दर मुख की ओर देखने की आशा से उसी ओर देखता रहा जिसने केवल एक बार उसे झलक दिखाकर मंत्रमुग्ध कर दिया था।

इधर उस कागज में लिपटी हुई वस्तु को एक अपरिचित व्यक्ति, जो छिपा खड़ा था, उठाकर चलता हुआ। धीरे-धीरे रजनी की गम्भीरता उस शैल-प्रदेश में और भी गम्भीर हो गयी और झाड़ियों की ओट में तो अन्धकार मूर्तिमान ही बैठा हुआ ज्ञात होता था, परन्तु उस युवक को इसकी कुछ भी चिन्ता नहीं। जब तक उस खिड़की में प्रकाश था, तब तक वह उसी ओर निर्निमेष देख रहा था, और कभी-कभी अस्फुट स्वर से वही गुनगुनाहट उसके मुख से वनस्पतियों को सुनाई पड़ती थी।

जब वह प्रकाश बिलकुल न रहा, तब वह युवक उठा और समीप के झरने के तट से होते हुए उसी अंधकार में विलीन हो गया।

२

दिवाकर की पहली किरण ने जब चमेली की कलियों को चटकाया, तब उन डालियों को उतना नहीं ज्ञात हुआ, जितना कि एक युवक के शरीर-स्पर्श से उन्हें हिलना पड़ा, जो कि काँटे और झाड़ियों का कुछ भी ध्यान न करके सीधा अपने मार्ग का अनुसरण कर रहा है। वह युवक फिर उसी खिड़की के सामने पहुँचा और जाकर अपने पूर्व-परिचित शिला-खंड पर बैठ गया, और पुनः वही क्रिया आरम्भ हुई। धीरे-धीरे एक सैनिक पुरुष ने आकर उस युवक के कन्धे पर अपना हाथ रक्खा।

युवक चौंक उठा और क्रोधित होकर बोला—तुम कौन हो ?

आगन्तुक हँस पड़ा और बोला—यही तो मेरा भी प्रश्न है कि तुम कौन हो ? और क्यों इस अन्तःपुर की खिड़की के सामने बैठे हो ? और तुम्हारा क्या अभिप्राय है ?

युवक—मैं यहाँ घूमता हूँ, और यही मेरा मकान है। मैं जो यहाँ बैठा हूँ, मित्र ! वह बात यह है कि मेरा एक मित्र इसी प्रकोष्ठ में रहता है ; मैं कभी-कभी उसका दर्शन पा जाता हूँ, और अपने चित्त को प्रसन्न करता हूँ।

सैनिक—पर मित्र ! तुम नहीं जानते कि यह राजकीय अन्तःपुर है। तुम्हें ऐसे देखकर तुम्हारी क्या दशा हो सकती है ? और महाराज तुम्हें क्या समझेंगे ?

युवक—जो कुछ हो; मेरा कुछ असत् अभिप्राय नहीं है, मैं तो केवल सुन्दर रूप का दर्शन ही निरन्तर चाहता हूँ, और यदि महाराज भी पूछें तो यही कहूँगा।

सैनिक—तुम जिसे देखते हो, वह स्वयं राजकुमारी है, और तुम्हें कभी नहीं चाहती। अतएव तुम्हारा यह प्रयास व्यर्थ है।

युवक—क्या वह राजकुमारी है ? तो चिन्ता क्या ! मुझे तो केवल देखना है, मैं बैठे-बैठे देखा करूँगा। पर तुम्हें यह कैसे मालूम कि वह मुझे

नहीं चाहती ?

सैनिक—प्रमाण चाहते हो तो (एक पत्र देकर) यह देखो।

युवक उसे लेकर पढ़ता है। उसमें लिखा था—

"युवक !

तुम क्यों अपना समय व्यर्थ व्यतीत करते हो ? मैं तुमसे कदापि नहीं मिल सकती। क्यों महीनों से यहाँ बैठे-बैठे अपना शरीर नष्ट कर रहे हो। मुझे तुम्हारी अवस्था देखकर दया आती है। अतः तुमको सचेत करती हूँ, फिर कभी यहाँ मत बैठना।

वही—

जिसे तुम देखा करते हो!"

३

युवक कुछ देर के लिये स्तम्भित हो गया। सैनिक सामने खड़ा था। अकस्मात् युवक उठकर खड़ा हो गया और सैनिक का हाथ पकड़कर बोला—मित्र! तुम हमारा कुछ उपकार कर सकते हो ? यदि करो, तो कुछ विशेष परिश्रम न होगा।

सैनिक—कहो, क्या है ? यदि हो सकेगा, तो अवश्य करूँगा।

तत्काल उस युवक ने अपनी उँगली एक पत्थर से कुचल दी, और अपने फटे वस्त्र में से एक टुकड़ा फाड़कर तिनका लेकर उसी रक्त से टुकड़े पर कुछ लिखा, और उस सैनिक के हाथ में देकर कहा—यदि हम न रहें, तो इसको उस निष्ठुर के हाथ में दे देना। बस, और कुछ नहीं।

इतना कहकर युवक ने पहाड़ी पर से कूदना चाहा; पर सैनिक ने उसे पकड़ लिया, और कहा—रसिया! ठहरो!—

युवक अवाक् हो गया; क्योंकि अब पाँच प्रहरी सैनिक के सामने सिर झुकाये खड़े थे, और पूर्व सैनिक स्वयं अर्बुदगिरि के महाराज थे।

महाराज आगे हुए और सैनिकों के बीच में रसिया। सब सिंहद्वार की ओर चले। किले के भीतर पहुँचकर रसिया को साथ में लिये हुए महाराज एक प्रकोष्ठ में पहुँचे। महाराज ने प्रहरी को आज्ञा दी कि महारानी और राजकुमारी को बुला लावे। वह प्रणाम कर चला गया।

महाराज—क्यों बलवन्त सिंह ! तुमने अपनी यह क्या दशा बना रक्खी है ?

रसिया—(चौंककर) महाराज को मेरा नाम कैसे ज्ञात हुआ ?

महाराज—बलवन्त ! मैं बचपन से तुम्हें जानता हूँ और तुम्हारे पूर्वपुरुषों को भी जानता हूँ।

रसिया चुप हो गया। इतने में महारानी भी राजकुमारी को साथ लिये हुए आ गयीं।

महारानी ने प्रणाम कर पूछा—क्या आज्ञा है ?

महाराज—बैठो, कुछ विशेष बात है। सुनो, और ध्यान से उसका उत्तर दो। यह युवक जो तुम्हारे सामने बैठा है, एक उत्तम क्षत्रिय कुल का है, और मैं इसे जानता हूँ। यह हमारी राजकुमारी के प्रणय का भिखारी है। मेरी इच्छा है कि इससे उसका ब्याह हो जाय।

राजकुमारी, जिसने कि आते ही युवक को देख लिया था और जो संकुचित होकर इस समय महारानी के पीछे खड़ी थी, यह सुनकर और भी संकुचित हुई। पर महारानी का मुख क्रोध से लाल हो गया। वह कड़े स्वर में बोलीं—क्या आपको खोजते-खोजते मेरी कुसुम-कुमारी कन्या के लिये यही वर मिला है ? वाह ! अच्छा जोड़ मिलाया। कंगाल और उसके लिए निधि; बन्दर और उसके गले में हार; भला यह भी कहीं सम्भव है ? आप शीघ्र अपने भ्रान्तिरोग की औषधि कर डालिये। यह भी कैसा परिहास है ! (कन्या से) चलो बेटी, यहाँ से चलो।

महाराज—नहीं, ठहरो और सुनो। यह स्थिर हो चुका है कि राज-

कुमारी का ब्याह बलवन्त से होगा, तुम इसे परिहास मत जानो।

अब जो महारानी ने महाराज के मुख की ओर देखा तो वह दृढ़प्रतिज्ञ दिखाई पड़े। निदान विचलित होकर महारानी ने कहा—अच्छा, मैं भी प्रस्तुत हो जाऊँगी, पर इस शर्त पर कि जब यह पुरुष अपने बाहुबल से उस झरने के समीप से नीचे तक एक पहाड़ी रास्ता काटकर बना ले; उसके लिये समय अभी से केवल प्रातःकाल तक का देती हूँ—जब तक कि कुक्कुट का स्वर न सुनाई पड़े। तब अवश्य मैं भी राजकुमारी का ब्याह इसी से कर दूंगी।

महाराज ने युवक की ओर देखा, जो निस्तब्ध बैठा हुआ सुन रहा था। वह उसी क्षण उठा और बोला—मैं प्रस्तुत हूँ, पर कुछ औज़ार और मसाले के लिए थोड़े विष की आवश्यकता है।

उसकी आज्ञानुसार सब वस्तुएँ उसे मिल गयीं, और वह शीघ्रता से उसी झरने के तट की ओर दौड़ा, और एक विशाल शिलाखण्ड पर जाकर बैठ गया, और उसे तोड़ने का उद्योग करने लगा; क्योंकि इसी के नीचे एक गुप्त पहाड़ी पथ था।

४

निशा का अन्धकार कानन-प्रदेश में अपना पूरा अधिकार जमाये हुए है। प्रायः आधी रात बीत चुकी है। पर केवल उन अग्नि-स्फुलिंगों से कभी-कभी थोड़ा-सा जुगनू का-सा प्रकाश हो जाता है, जो कि रसिया के शस्त्रप्रहार से पत्थरों में से निकल पड़ते हैं। दनादन् चोट चली जा रही है—विराम नहीं है क्षण-भर भी—न तो उस शैल को और न उस शस्त्र को। अलौकिक शक्ति से वह युवक अविराम चोट लगाये ही जा रहा है। एक क्षण के लिये भी इधर-उधर नहीं देखता। देखता है, तो केवल अपना हाथ और पत्थर; उंगली एक तो पहले ही कुचली जा चुकी थी, दूसरे अविराम परिश्रम! इससे रक्त बहने लगा था। पर विश्राम

कहाँ ? उस वज्रसार शैल पर वज्र के समान कर से वह युवक चोट लगाये ही जाता है। केवल परिश्रम ही नहीं, युवक सफल भी हो रहा है। उसकी एक-एक चोट में दस-दस सेर के ढोके कट-कटकर पहाड़ पर से लुढ़कते हैं, जो सोये हुए जंगली पशुओं को घबड़ा देते हैं। यह क्या है ? केवल उसकी तन्मयता। केवल प्रेम ही उस पाषाण को भी तोड़े डालता है !

फिर वही दनादन्—बराबर लगातार परिश्रम, विराम नहीं है ! इधर उस खिड़की में से आलोक भी निकल रहा है और कभी-कभी एक मुखड़ा उस खिड़की से झांककर देख रहा है। पर युवक को कुछ ध्यान नहीं, वह अपना कार्य करता जा रहा है।

अभी रात्रि के जाने के लिये पहर-भर है। शीतल वायु उस कानन को शीतल कर रही है। अकस्मात् 'तरुण-कुक्कुट-कण्ठनाद' सुनाई पड़ा, फिर कुछ नहीं। वह कानन एकाएक शून्य हो गया। न तो वह शब्द ही है और न तो पत्थरों से अग्निस्फुलिंग निकलते है।

अकस्मात् उस खिड़की में से एक सुन्दर मुख निकला। उसने व्यालोक डालकर देखा कि रसिया एक पात्र हाथ में लिये हैं और कुछ कह रहा है। इसके उपरान्त वह उस पात्र को पी गया और थोड़ी देर में वह उसी शिला-खण्ड पर गिर पड़ा। यह देख उस मुख से भी एक हलका चीत्कार निकल गया। खिड़की बन्द हो गयी। फिर केवल अन्धकार रह गया।

प्रभात का मलय-मारुत उस अर्बुद-गिरि के कानन में वैसी क्रीड़ा नहीं कर रहा है, जैसी पहले करता था। दिवाकर की किरण भी कुछ प्रभात के मिस से मन्द और मलिन हो रही है। एक शव के समीप एक पुरुष खड़ा है, और उसकी आँखों से अश्रुधारा बह रही है, और वह कह रहा है—बलवन्त ! ऐसी शीघ्रता क्या थी जो तुमने ऐसा किया ?

यह अर्बुद-गिरि का प्रदेश तो कुछ समय में यह वृद्ध तुम्हीं को देता, और तुम उसमें चाहे जिस स्थान पर अच्छे पर्यंक पर सोते। फिर, ऐसे क्यों पड़े हो ? वत्स ! यह तो केवल तुम्हारी परीक्षा* थी, यह तुमने क्या किया ?

इतने में एक सुन्दरी विमुक्त-कुन्तला--जो कि स्वयं राजकुमारी थी--दौड़ी हुई आयी और उस शव को देखकर ठिठक गयी, नत-जानु होकर उस पुरुष का जो कि महाराज थे और जिसे इस समय तक राजकुमारी पहचान न सकी थी--चरण धरकर बोली--महात्मन् ! क्या इस व्यक्ति ने, जो यहाँ पड़ा है, मुझे कुछ देने के लिये आपको दिया है ? या कुछ कहा है ?

महाराज ने चुपचाप अपने वस्त्र में से एक वस्त्र का टुकड़ा निकालकर दे दिया। उस पर लाल अक्षरों मे कुछ लिखा था। उस सुन्दरी ने उसे देखा और देखकर कहा--कृपया आप ही पढ़ दीजिये।

महाराज ने उसे पढ़ा। उसमें लिखा था--"मै नहीं जानता था कि तुम इतनी निठुर हो। अस्तु; अब मैं यहीं रहूँगा; पर याद रखना; मैं तुमसे अवश्य मिलूँगा, क्योंकि मै तुम्हे नित्य देखा चाहता हूँ; और ऐसे स्थान में देखूँगा, जहाँ कभी पलक गिरती ही नहीं।

तुम्हारा दर्शनाभिलाषी--

रसिया"

इसी समय महाराज को सुन्दरी पहचान गयी, और फिर चरण धरकर बोली--पिताजी, क्षमा करना। और, शीघ्रतापूर्वक रसिया

---

* वास्तव में वह शब्द कुक्कट का नहीं बल्कि छद्म-वेशिनी महारानी का था, जो कि बलवन्त सिह-ऐसे दीन व्यक्ति से अपनी कुसुम-कुमारी का पाणिग्रहण की अभिलाषा नही रखती थी। किन्तु महाराज इससे अनभिज्ञ थे।

के कर-स्थित पात्र को लेकर अवशेष पी गयी और गिर पड़ी। केवल उसके मुख से इतना निकला—"पिताजी, क्षमा करना। महाराज देख रहे थे!

शरणागत

१

प्रभात-कालीन सूर्य की किरणें अभी पूर्व के आकाश में नहीं दिखाई पड़ती हैं। ताराओं का क्षीण प्रकाश अभी अम्बर में विद्यमान है। यमुना के तट पर दो-तीन रमणियाँ खड़ी हैं, और दो—यमुना की उन्हीं क्षीण लहरियों में जो कि चन्द्र के प्रकाश से रञ्जित हो रही हैं—स्नान कर रही है। अकस्मात् पवन बड़े वेग से चलने लगा। इसी समय एक सुन्दरी, जो कि बहुत ही सुकुमारी थी, उन्हीं तरल तरंगों में निमग्न हो गयी। दूसरी, जो कि घबड़ाकर निकलना चाहती थी, किसी काठ का सहारा पाकर तट की ओर खड़ी हुई अपनी सखियों में जा मिली। पर वहाँ सुकुमारी नहीं थी। सब रोती हुई यमुना के तट पर घूमकर उसे खोजने लगीं।

अन्धकार हट गया। अब सूर्य भी दिखाई देने लगे। कुछ ही देर में उन्हें, घबड़ाई हुई स्त्रियों को आश्वासन देती हुई, एक छोटी-सी नाव दिखाई दी। उन सखियों ने देखा कि वह सुकुमारी उसी नाव पर एक अंग्रेज और एक लेडी के साथ बैठी हुई है।

तट पर आने पर मालूम हुआ कि सिपाही-विद्रोह की गड़बड़ से भागे हुए एक सम्भ्रान्त योरोपियन-दम्पति उस नौका के आरोही हैं। उन्होंने सुकुमारी को डूबते हुए बचाया है और इसे पहुँचाने के लिये वे लोग यहाँ तक आये हैं।

सुकुमारी को देखते ही सब सखियों ने दौड़कर उसे घेर लिया और उससे लिपट-लिपटकर रोने लगीं। अंग्रेज और लेडी दोनों ने जाना चाहा, पर वे स्त्रियाँ कब माननेवाली थीं? लेडी साहिबा को रुकना पड़ा। थोड़ी देर में यह खबर फैल जाने से उस गांव के जमींदार ठाकुर किशोर

सिंह भी उस स्थान पर आ गये । अब, उनके अनुरोध करने से, विल्फर्ड और एलिस को उनका आतिथ्य स्वीकार करने के लिये विवश होना पड़ा; क्योंकि सुकुमारी, किशोर सिंह की ही स्त्री थी, जिसे उन लोगों ने बचाया था ।

२

चन्दनपुर के जमींदार के घर में, जो यमुना-तट पर बना हुआ है, पाईं-बाग के भीतर, एक रविश में चार कुर्सियाँ पड़ी हैं । एक पर किशोर सिंह और दो कुर्सियों पर विल्फर्ड और एलिस बैठे है, तथा चौथी कुर्सी के सहारे सुकुमारी खड़ी है । किशोर सिंह मुस्करा रहे हैं, और एलिस आश्चर्य की दृष्टि से सुकुमारी को देख रही है । विल्फर्ड उदास हैं और सुकुमारी मुख नीचा किये हुए है । सुकुमारी ने कनखियों से किशोर सिंह की ओर देखकर सिर झुका लिया ।

एलिस--(किशोर सिंह से) बाबू साहब, आप इन्हे बैठने की इजाजत दें ।

किशोर सिंह--मै क्या मना करता हूँ ?

एलिस--(सुकुमारी को देखकर) फिर वह क्यों नहीं बैठतीं ?

किशोर सिंह--आप कहिये, शायद बैठ जायँ ।

विल्फर्ड--हाँ, आप क्यों खड़ी है ?

बेचारी सुकुमारी लज्जा से गड़ी जाती थी ।

एलिस--(सुकुमारी की ओर देखकर) अगर आप न बैठेंगी, तो मुझे बहुत रंज होगा ।

किशोर सिंह--यों न बैठेंगी, हाथ पकड़कर बिठाइये ।

एलिस सचमुच उठी, पर सुकुमारी एक बार किशोर सिंह की ओर वक्र दृष्टि से देखकर हँसती हुई पास की बारहदरी में भागकर चली गयी, किन्तु एलिस ने पीछा न छोड़ा । वह भी वहाँ पहुँची, और उसे पकड़ा । सुकुमारी एलिस को देख गिड़-गिड़ाकर बोली--क्षमा कीजिये,

हम लोग पति के सामने कुर्सी पर नहीं बैठतीं, और न कुर्सी पर बैठने का अभ्यास ही है।

एलिस चुपचाप खड़ी रह गयी, वह सोचने लगी कि—क्या सचमुच पति के सामने कुर्सी पर न बैठना चाहिये ! फिर उसने सोचा—यह बेचारी जानती ही नहीं कि कुर्सी पर बैठने मे क्या सुख है ?

३

चन्दनपुर के जमींदार के यहाँ आश्रय लिये हुए योरोपियन-दम्पति सब प्रकार सुख से रहने पर भी सिपाहियों का अत्याचार सुनकर शंकित रहते थे। दयालु किशोर सिंह यद्यपि उन्हें बहुत आश्वासन देते, तो भी कोमल प्रकृति की सुन्दरी एलिस सदा भयभीत रहती थी।

दोनों दम्पति कमरे मे बैठे हुए यमुना का सुन्दर जल-प्रवाह देख रहे है। विचित्रता यह है कि 'सिगार' न मिल सकने के कारण विलफर्ड साहब सटक के सड़ाके लगा रहे है। अभ्यास न होने के कारण सटक से उन्हे बड़ी अड़चन पड़ती थी, तिस पर सिपाहियों के अत्याचार का ध्यान उन्हें और भी उद्विग्न किये हुए था; क्योंकि एलिस का भय से पीला मुख उनसे देखा न जाता था।

इतने में बाहर कोलाहल सुनाई पड़ा। एलिस के मुख से 'ओ माई गाड' (Oh my god) निकल पड़ा। और भय से वह मूर्च्छित हो गयी। विलफर्ड और किशोरसिंह ने एलिस को पलंग पर लिटाया, और आप 'बाहर क्या है' सो देखने के लिये चले।

विलफर्ड ने अपनी राइफल हाथ में ली और साथ में जाना चाहा, पर किशोरसिंह ने उन्हें समझाकर बैठाला और आप खूंटी पर लटकती हुई तलवार लेकर बाहर निकल गये।

किशोर सिंह बाहर आ गये, देखा तो पाँच कोस पर जो उनका सुन्दरपुर ग्राम है, उसे सिपाहियों ने लूट लिया और प्रजा दुखी होकर अपने जमींदार से अपनी दुःख गाथा सुनाने आयी है। किशोर सिंह ने सबको

आश्वासन दिया, और उनके खाने-पीने का प्रबन्ध करने के लिये कर्म-चारियों को आज्ञा देकर आप विल्फर्ड और एलिस को देखने के लिये भीतर चले आये।

किशोर सिंह स्वाभाविक दयालु थे और उनकी प्रजा उन्हें पिता के समान मानती थी, और उनका उस प्रान्त मे भी बड़ा सम्मान था। वह बहुत बड़े इलाकेदार होने के कारण छोटे-से राजा समझे जाते थे। उनका प्रेम सब पर बराबर था। किन्तु, विल्फर्ड और सरला एलिस को भी वह बहुत चाहने लगे, क्योंकि प्रियतमा सुकुमारी की उन लोगों ने प्राणरक्षा की थी।

किशोर सिंह भीतर आये। एलिस को देखकर कहा—डरने की कोई बात नहीं है। वह मेरी प्रजा थी, समीप के सुन्दरपुर गाँव में वे सब रहते हैं। उन्हे सिपाहियों ने लूट लिया है। उनका बन्दोबस्त कर दिया गया है। अब उन्हें कोई तकलीफ नहीं है।

एलिस ने लम्बी साँस लेकर आँख खोल दी, और कहा—क्या वे सब गये?

सुकुमारी—घबराओ मत, हम लोगों के रहते तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं हो सकता।

विल्फर्ड—क्या सिपाही रियासतों को लूट रहे है?

किशोर सिंह—हाँ, पर अब कोई डर नहीं है, वे लूटते हुए इधर से निकल गये।

विल्फर्ड—अब हमको कुछ डर नहीं है।

किशोर सिंह—आपने क्या सोचा?

विल्फर्ड—अब ये सब अपने भाइयों को लूटते हैं, तो शीघ्र ही अपने अत्याचार का फल पावेंगे और इनका किया कुछ न होगा।

किशोर सिंह ने गम्भीर होकर कहा—ठीक है।

एलिस ने कहा—मैं आज आप लोगों के संग भोजन करूँगी।

किशोर सिंह और सुकुमारी एक दूसरे का मुख देखने लगे। फिर किशोर सिंह ने कहा—बहुत अच्छा।

५

साफ दालान में दो कम्बल अलग-अलग दूरी पर बिछा दिये गये हैं। एक पर किशोर सिंह बैठे थे और दूसरे पर विल्फर्ड और एलिस; पर एलिस की दृष्टि बार-बार सुकुमारी को खोज रही थी, और वह बार-बार यही सोच रही थी कि किशोर सिंह के साथ सुकुमारी अभी नहीं बैठी।

थोड़ी देर में भोजन आया, पर खानसामा नहीं। स्वयं सुकुमारी एक थाल लिये है और तीन-चार औरतों के हाथ में भी खाद्य और पेय वस्तुएँ हैं। किशोर सिंह के इशारा करने पर सुकुमारी ने वह थाल एलिस के सामने रखा, और इसी तरह विल्फर्ड और किशोर सिंह को परस दिया गया। पर किसी ने भोजन करना नहीं आरम्भ किया।

एलिस ने सुकुमारी से कहा—आप क्या यहाँ भी न बैठेंगी? क्या यहाँ भी कुर्सी है?

सुकुमारी—परसेगा कौन?

एलिस—खानसामा।

सुकुमारी—क्यों, ? क्या मैं नहीं हूँ?

किशोर सिंह—जिद न कीजिये, यह हमारे भोजन कर लेने पर भोजन करती है।

एलिस ने आश्चर्य और उदासी-भरी एक दृष्टि सुकुमारी पर डाली। एलिस को भोजन कैसा लगा, सो नहीं कहा जा सकता।

*　　　*　　　*

भारत में शान्ति स्थापित हो गयी है। अब विल्फर्ड और एलिस

अपनी नील की कोठी पर वापस जानेवाले हैं। चन्दनपुर में उन्हें बहुत दिन रहना पड़ा । नील-कोठी वहाँ से दूर है ।

दो घोड़े सजे-सजाये खड़े हैं और किशोर सिंह के आठ सशस्त्र सिपाही उनको पहुँचाने के लिये उपस्थित है । विल्फर्ड साहब किशोर सिंह से बातचीत करके छुट्टी पा चुके है । केवल एलिस अभी तक भीतर से नहीं आयी । उन्हीं के आने की देर है ।

विल्फर्ड और किशोर सिंह पाई-बाग में टहल रहे थे । इतने में सात-आठ स्त्रियों का झुण्ड मकान से बाहर निकला । हैं ! यह क्या ? एलिस ने अपना गाउन नहीं पहना, उसके बदले फीरोजी रंग के रेशमी कपड़े का कामदानी लहँगा और मखमल की कंचुकी, जिसके सितारे रेशमी ओढ़नी के ऊपर से चमक रहे है । हैं ! यह क्या ? स्वाभाविक अरुण अधरों में पान की लाली भी है, आँखों में काजल की रेखा भी है, चोटी भी फूलों से गूंधी जा चुकी है, और मस्तक में सुन्दर सा बाल-अरुण की तरह बिन्दु भी तो है !

देखते ही किशोर सिंह, खिलखिलाकर हँस पड़े, और विल्फर्ड तो भौचक्के-से रह गये ।

किशोर सिंह ने एलिस से कहा—आपके लिये भी घोड़ा तैयार है—पर सुकुमारी ने कहा—नहीं, इनके लिये पालकी मँगा दो ।

सिकन्दर की शपथ

१

सूर्य की चमकीली किरणों के साथ, यूनानियों के बरछे की चमक से 'मिग लौर'-दुर्ग घिरा हुआ है। यूनानियों के दुर्ग तोड़ने वाले यंत्र दुर्ग की दीवालों से लगा दिये गये हैं, और वे अपना कार्य बड़ी शीघ्रता के साथ कर रहे है। दुर्ग की दीवाल का एक हिस्सा टूटा और यूनानियों की सेना उसी भग्न मार्ग से जयनाद करती हुई घुसने लगी। पर वह उसी समय पहाड़ से टकराये हुए समुद्र की तरह फिरा दी गयी, और भारतीय युवक वीरों की सेना उनका पीछा करती हुई दिखाई पड़ने लगी। सिकंदर उनके प्रचण्ड अस्त्राघात को रोकता पीछे हटने लगा।

अफगानिस्तान में 'अश्वक' वीरों के साथ भारतीय वीर कहाँ से आ गये? यह शंका हो सकती है, किन्तु पाठकगण! वे निमंत्रित होकर उनकी रक्षा के लिये सुदूर से आये है, जो कि संख्या में केवल सात हजार होने पर भी ग्रीकों की असंख्य सेना को बराबर पराजित कर रहे हैं।

सिकन्दर को उस सामान्य दुर्ग के अवरोध में तीन दिन व्यतीत हो गये। विजय की सम्भावना नहीं है, सिकन्दर उदास होकर कैम्प में लौट गया, और सोचने लगा। सोचने की बात ही है। गाज़ा और परसिपोलिस आदि के विजेता को अफगानिस्तान के एक छोटे-से दुर्ग के जीतने में इतना परिश्रम उठाकर भी सफलता मिलती नहीं दिखाई देती, उलटे कई बार उसे अपमानित होना पड़ा।

बैठे-बैठे सिकन्दर को बहुत देर हो गयी। अन्धकार फैलकर संसार को छिपाने लगा, जैसे कोई कपटाचारी अपनी मंत्रणा को छिपाता हो। केवल कभी-कभी दो-एक उल्लू उस भीषण रणभूमि में अपने भयावह शब्द को सुना देते हैं। सिकन्दर ने सीटी देकर कुछ इंगित किया, एक

वीर पुरुष सामने दिखाई पड़ा। सिकन्दर ने उससे कुछ गुप्त बातें कीं, और वह चला गया। अन्धकार घनीभूत हो जाने पर सिकन्दर भी उसी ओर उठकर चला, जिधर वह पहला सैनिक जा चुका था।

२

दुर्ग के उस भाग में, जो टूट चुका था, बहुत शीघ्रता से काम लगा हुआ था, जो बहुत शीघ्र कल की लड़ाई के लिये प्रस्तुत कर दिया गया और सब लोग विश्राम करने के लिये चले गये। केवल एक मनुष्य उसी स्थान पर प्रकाश डालकर कुछ देख रहा है। वह मनुष्य कभी तो खड़ा रहता है और कभी अपनी प्रकाश फैलानेवाली मशाल को लिये हुए दूसरी ओर चला जाता है। उस समय उस घोर अन्धकार में उस भयावह दुर्ग की प्रकाण्ड छाया और भी स्पष्ट हो जाती है। उसी छाया में छिपा हुआ सिकन्दर खड़ा है। उसके हाथ में धनुष और बाण है, उसके सब अस्त्र उसके पास है। उसका मुख यदि कोई इस समय प्रकाश में देखता, तो अवश्य कहता कि यह कोई बड़ी भयानक बात सोच रहा है; क्योंकि उसका सुन्दर मुखमंडल इस समय विचित्र भावों से भरा है। अकस्मात् उसके मुख से एक प्रसन्नता का चीत्कार निकल पड़ा, जिसे उसने बहुत व्यग्र होकर छिपाया।

समीप की झाड़ी से एक दूसरा मनुष्य निकल पड़ा, जिसने आकर सिकन्दर से कहा—देर न कीजिये, क्योंकि यह वही है।

सिकन्दर ने धनुष को ठीक करके एक विषमय बाण उस पर छोड़ा और उसे उसी दुर्ग पर टहलते हुए मनुष्य की ओर लक्ष्य करके छोड़ा। लक्ष्य ठीक था, वह मनुष्य लुढ़ककर नीचे आ रहा। सिकन्दर और उसके साथी ने झट जाकर उसे उठा लिया, किन्तु उसके चीत्कार से दुर्ग पर का एक प्रहरी झुककर देखने लगा। उसने प्रकाश डालकर पूछा—कौन है?

उत्तर मिला—मैं दुर्ग से नीचे गिर पड़ा हूँ।

प्रहरी ने कहा--घबड़ाइये मत, मै डोरी लटकाता हूँ।

डोरी बहुत जल्द लटका दी गयी, अफगान वेशधारी सिकन्दर उसके सहारे ऊपर चढ़ गया। ऊपर जाकर सिकन्दर ने उस प्रहरी को भी नीचे गिरा दिया, जिसे उसके साथी ने मार डाला और उसका वेश आप लेकर उस सीढ़ी से ऊपर चढ़ गया। जाने के पहले उसने अपनी छोटी-सी सेना को भी उसी जगह बुला लिया और धीरे-धीरे उसी रस्सी की सीढ़ी से वे सब ऊपर पहुँचा दिये गये।

३

दुर्ग के प्रकोष्ठ में सरदार की सुन्दर पत्नी बैठी हुई है। मदिरा-विलोल दृष्टि से कभी दर्पण में अपना सुन्दर मुख और कभी अपने नवीन नील वसन को देख रही है। उसका मुख लालसा की मदिरा से चमक-चमक कर उसकी ही आँखों में चकाचौंध पैदा कर रहा है। अकस्मात् 'प्यारे सरदार, कहकर वह चौक पड़ी, पर उसकी प्रसन्नता उसी क्षण बदल गयी, जब उसने सरदार' के वेश में दूसरे को देखा। सिकन्दर का मानुषिक सौन्दर्य कुछ कम नहीं था, अबला-हृदय को और भी दुर्बल बना देने के लिये वह पर्याप्त था। वे एक दूसरे को निर्निमेष दृष्टि से देखने लगे। पर अफगान-रमणी की शिथिलता देर तक न रही, उसने हृदय के सारे बल को एकत्र करके पूछा--तुम कौन हो ?

उत्तर मिला--शाहंशाह सिकन्दर।

रमणी ने पूछा--यह वस्त्र किस तरह मिला ?

सिकन्दर ने कहा--सरदार को मार डालने से।

रमणी के मुख से चीत्कार के साथ ही निकल पड़ा--क्या, सरदार मारा गया ?

सिकन्दर--हाँ, अब वह इस लोक में नहीं है।

रमणी ने अपना मुख दोनों हाथों से ढँक लिया, पर उसी क्षण उसके हाथ में एक चमकता हुआ छुरा दिखाई देने लगा।

सिकन्दर घुटने के बल बैठ गया और बोला—सुन्दरी ! एक जीव के लिये तुम्हारी दो तलवारें बहुत थीं, फिर तीसरी की क्या आवश्यकता ?

रमणी की दृढ़ता हट गयी, और न जाने क्यों उसके हाथ का छुरा छटककर गिर पड़ा; वह भी घुटनों के बल बैठ गयी।

सिकन्दर ने उसका हाथ पकड़कर उठाया। अब उसने देखा कि सिकन्दर अकेला नहीं है, उसके बहुत-से सैनिक दुर्ग पर दिखाई दे रहे हैं। रमणी ने अपना हृदय दृढ़ किया और सन्दूक खोलकर एक जवाहिरात का डब्बा ले आकर सिकन्दर के आगे रक्खा। सिकन्दर ने उसे देखकर कहा—मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है, दुर्ग पर मेरा अधिकार हो गया, इतना ही बहुत है।

दुर्ग के सिपाही यह देखकर कि शत्रु भीतर आ गया है, अस्त्र लेकर मारकाट करने पर तैयार हो गये। पर सरदार-पत्नी ने उन्हे मना किया, क्योंकि उसे बतला दिया गया था कि सिकन्दर की विजयवाहिनी दुर्ग के द्वार पर खड़ी है।

सिकन्दर ने कहा—तुम घबड़ाओ मत, जिस तरह से तुम्हारी इच्छा होगी, उसी प्रकार सन्धि के नियम बनाये जायँगे। अच्छा, मैं जाता हूँ।

अब सिकन्दर को थोड़ी दूर तक सरदार-पत्नी पहुँचा गयी। सिकन्दर थोड़ी सेना छोड़कर आप अपने शिविर में चला गया।

सन्धि हो गयी। सरदार-पत्नी ने स्वीकार कर लिया कि दुर्ग सिकन्दर के अधीन होगा। सिकन्दर ने भी उसी को यहाँ की रानी बनाया और कहा—भारतीय योद्धा जो तुम्हारे यहाँ आये हैं, वे अपने देश को लौटकर चले जायँ। मैं उनके जाने में किसी प्रकार की बाधा न डालूंगा। सब बातें शपथपूर्वक स्वीकार कर ली गयीं।

राजपूत वीर अपने परिवार के साथ उस दुर्ग से निकल पड़े, स्वदेश की ओर चलने के लिये तैयार हुए। दुर्ग के समीप ही एक पहाड़ी पर उन्होंने अपना डेरा जमाया, और भोजन करने का प्रबन्ध करने लगे।

भारतीय रमणियाँ जब अपने प्यारे पुत्रों और पतियों के लिये भोजन प्रस्तुत कर रही थीं, तो उनमें उस अफगान-रमणी के बारे में बहुत बातें हो रही थीं, और वे सब उसे बड़ी घृणा की दृष्टि से देखने लगीं, क्योंकि उसने एक पति-हत्याकारी को आत्मसमर्पण कर दिया था। भोजन के उपरान्त जब सब सैनिक विराम करने लगे, तब युद्ध की बातें कहकर अपने चित्त को प्रसन्न करने लगे। थोड़ी देर नहीं बीती थी कि एक ग्रीक अश्वा-रोही उनके समीप आता दिखाई पड़ा, जिसे देखकर एक राजपूत युवक उठ खड़ा हुआ और उसकी प्रतीक्षा करने लगा।

ग्रीक सैनिक उसके समीप आकर बोला—शाहंशाह सिकन्दर ने तुम लोगों को दया करके अपनी सेना में भरती करने का विचार किया है। आशा है कि इस संवाद से तुम लोग बहुत प्रसन्न होगे।

युवक बोल उठा—इस दया के लिये हम लोग कृतज्ञ हैं, पर अपने भाइयों पर अत्याचार करने में ग्रीकों का साथ देने के लिये हम लोग कभी प्रस्तुत नहीं हैं।

ग्रीक—तुम्हें प्रस्तुत होना चाहिये, क्योंकि यह शाहंशाह सिकन्दर की आज्ञा है।

युवक—नहीं महाशय, क्षमा कीजिये। हम लोग आशा करते हैं कि सन्धि के अनुसार हम लोग अपने देश को शान्तिपूर्वक लौट जायँगे, इसमें बाधा न डाली जायगी।

ग्रीक—क्या तुम लोग इस बात पर दृढ़ हो? एक बार और विचार-कर उत्तर दो, क्योंकि उसी उत्तर पर तुम लोगों का जीवन-मरण निर्भर होगा।

इस पर कुछ राजपूतों ने समवेत स्वर से कहा—हाँ-हाँ, हम अपनी

बात पर दृढ़ हैं, किन्तु सिकन्दर, जिसने देवताओं के नाम से शपथ ली है, अपनी शपथ को न भूलेगा।

ग्रीक---सिकन्दर ऐसा मूर्ख नहीं है कि आये हुए शत्रुओं को और दृढ़ होने का अवकाश दे। अस्तु, अब तुम लोग मरने के लिये तैयार हो।

इतना कहकर वह ग्रीक अपने घोड़े को घुमाकर सीटी बजाने लगा, जिसे सुनकर अगणित ग्रीक-सेना उन थोड़े-से हिन्दुओं पर टूट पड़ी।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि उन्होंने प्राण-पण से युद्ध किया और जब तक कि उनमें एक भी बचा, बराबर लड़ता गया। क्यों न हो, जब उनकी प्यारी स्त्रियाँ उन्हें अस्त्रहीन देखकर तलवार देती थीं और हँसती हुई अपने प्यारे पतियों की युद्ध-क्रिया देखती थीं। रणचण्डियाँ भी अकर्मण्य न रहीं, जीवन देकर अपना धर्म रखा। ग्रीकों की तलवारों ने उनके बच्चों को भी रोने न दिया, क्योंकि पिशाच सैनिकों के हाथ सभी मारे गये।

अज्ञात स्थान में निराश्रय होकर उन सब वीरों ने प्राण दिये। भारतीय लोग उनका नाम भी नहीं जानते!

चित्तौर-उद्धार

१

दीपमालाएँ आपस में कुछ हिल-हिलकर इंगित कर रही हैं, किन्तु मौन हैं। सज्जित मन्दिर में लगे हुए चित्र एकटक एक दूसरे को देख रहे हैं, शब्द नहीं हैं। शीतल समीर आता है, किन्तु धीरे-से वातायन-पथ के पार हो जाता है, दो सजीव चित्रों को देखकर वह कुछ कह नहीं सकता है। पर्यंक पर भाग्यशाली मस्तक उन्नत किये हुए चुपचाप बैठा हुआ युवक, स्वर्ण-पुत्तली की ओर देख रहा है, जो कोने में निर्वात दीपशिखा की तरह प्रकोष्ठ को आलोकित किये हुए है। नीरवता का सुन्दर दृश्य, भाव-विभोर होने का प्रत्यक्ष प्रमाण, स्पष्ट उस गृह में आलोकित हो रहा है।

अकस्मात् गम्भीर कण्ठ से युवक उद्वेग में भर बोल उठा—सुन्दरी! आज से तुम मेरी धर्म-पत्नी हो, फिर मुझसे संकोच क्यों ?

युवती कोकिल-स्वर से बोली—महाराजकुमार! यह आपकी दया है जो दासी को अपनाना चाहते हैं, किन्तु वास्तव में दासी आपके योग्य नहीं है।

युवक—मेरी धर्मपरिणीताबधू, मालदेव की कन्या अवश्य मेरे योग्य है। यह चाटूक्ति मुझे पसन्द नहीं। तुम्हारे पिता ने, यद्यपि वह मेरे चिर-शत्रु हैं, तुम्हारे ब्याह के लिये नारियल भेजा, और मैंने राजपूत-धर्मानुसार उसे स्वीकार किया, फिर भी तुम्हारी-ऐसी सुन्दरी को पाकर हम प्रवंचित नहीं हुए और इसी अवसर पर अपने पूर्व-पुरुषों की जन्म-भूमि का भी दर्शन मिला।

उदारहृदय राजकुमार! मुझे क्षमा कीजिये। देवता से छलना मनुष्य नहीं कर सकता। मै इस सम्मान के योग्य नहीं कि पर्यंक पर बैठूँ, किन्तु

form rate. For the same reason, bodies projected upward lose their velocity at a uniform rate.

Motion under gravity was studied even in earlier times and it was believed for a long time that heavier bodies fell quicker than lighter ones. The unequal velocities with which lighter bodies (like a feather) and heavier bodies (like a piece of lead) fell to the earth gave support to this belief. But in the 16th century Galileo showed for the first time that all bodies fell with the same velocity by letting fall from the leaning tower of Pisa two iron balls, one of 100 lb mass and the other of 1 lb. mass. They reached the ground almost simultaneously, though not at the same time.

However, in the next century the conflicting results stated above were satisfactorily explained by Newton through his feather and guinea experiment. He introduced a feather and guinea into a long glass tube about 4 ft, long (Fig. 18), removed the air from it and allowed them to fall from one end of the tube by inverting the tube all of a sudden. They were found to reach the other end of the tube **simultaneously.** But when he repeated the experiment by admitting some air into the tube, the feather lagged behind.

The lagging was found to depend on the amount of air admitted into the tube. Hence it became clear that it was only the resistance offered by the air that slowed down the motion of the lighter bodies. In the absence of such a resistance **all bodies, light or heavy, fall down under gravity with the same acceleration.**

Fig. 18.
Feather and guinea expt.

The acceleration due to earth's gravity is conventionally indicated by the letter g. Due to flattening of the earth near the poles and bulging near the equator, the value of g varies slightly from place to place, being maximum(983 cm./sec.^{2}) near the poles and minimum (971 cm./sec.^{2}) near the equator. However, **unless otherwise stated, the value of g is taken as 981 cm./sec.^{2} in the C.G.S. system and 32 ft./sec.^{2} in the F.P.S. system.**

पलँग पर बैठाया, और कहा—आओ, तुम्हें मुझसे—समाज, संसार—कोई भी नहीं अलग कर सकता।

राजकुमारी ने वाष्परुद्ध कंठ से कहा—इस अनाथिनी को सनाथ करके आपने चिर-ऋणी बनाया, और विह्वल होकर हम्मीर के अंक में सिर रख दिया।

२

कैलवाड़ा-प्रदेश के छोटे-से दुर्ग के एक प्रकोष्ठ में राजकुमार हम्मीर बैठे हुए चिन्ता में निमग्न हैं। सोच रहे थे—जिस दिन मुंज का सिर मैंने काटा, उसी दिन एक भारी बोझ मेरे सिर दिया गया, वह पितृव्य का दिया हुआ महाराणा-वंश का राज-तिलक है, उसका पूरा निर्वाह जीवन भर करना कर्तव्य है। चित्तौर का उद्धार करना ही मेरा प्रधान लक्ष्य है। पर देखूँ ईश्वर कैसे इसे पूरा करता है। इस छोटी-सी सेना से, यथोचित धन का अभाव रहते, वह क्योंकर हो सकता है। रानी मुझे चिन्ताग्रस्त देखकर यही समझती है कि विवाह ही मेरे चिन्तित होने का कारण है। मैं उसकी ओर देखकर मालदेव पर कोई अत्याचार करने पर संकुचित होता हूँ। ईश्वर की कृपा से एक पुत्र भी हुआ, किन्तु मुझे नित्य चिन्तित देखकर रानी पिता के यहाँ चली गयी है। यद्यपि देवता-पूजन करने के लिये ही वहाँ उनका जाना हुआ है, किन्तु मेरी उदासीनता भी कारण है। भगवान एकलिंगेश्वर कैसे इस दुःसाध्य कार्य को पूर्ण करते हैं, यह वही जाने।

इसी तरह की अनेक विचार-तरंगें मानस में उठ रही थीं। संध्या की शोभा सामने की गिरि-श्रेणी पर अपनी लीला दिखा रही है, किंतु चिन्तित हम्मीर को उसका आनन्द नहीं। देखते-देखते अन्धकार ने गिरिप्रदेश को ढँक लिया। हम्मीर उठे, वैसे ही द्वारपाल ने आकर कहा—महाराज विजयी हों। चित्तौर से एक सैनिक, महारानी का भेजा हुआ, आया है।

थोड़ी ही देर में सैनिक लाया गया और अभिवादन करने के बाद उसने एक पत्र हम्मीर के हाथ में दिया। हम्मीर ने उसे लेकर सैनिक को बिदा किया, और पत्र पढ़ने लगे—

प्राणनाथ जीवनसर्वस्व के चरणों में

कोटिशः प्रणाम।

देव! आपकी कृपा ही मेरे लिये कुशल है। मुझे यहाँ आये इतने दिन हुए, किन्तु एक बार भी आपने पूछा नहीं। इतनी उदासीनता क्यों? क्या, साहस में भरकर जो मुझे आपने स्वीकार किया, उसका प्रतिकार कर रहे है? देवता! ऐसा न चाहिये। मेरा अपराध ही क्या? मै आपका चिन्तित मुख नहीं देख सकती, इसीलिए कुछ दिनों के लिए यहाँ चली आयी हूँ, किन्तु बिना उस मुख के देखे भी शान्ति नहीं। अब कहिये, क्या करूँ? देव! जिस भूमि की दर्शनाभिलाषा ने ही आपको मुझसे ब्याह करने के लिये बाध्य किया, उसी भूमि में आने से मेरा हृदय अब कहता है कि आप ब्याह करके नहीं पश्चात्ताप कर रहे है, किन्तु आपकी उदासीनता केवल चित्तौर-उद्धार के लिये है। मैं इसमें बाधा-स्वरूप आपको दिखाई पड़ती हूँ। मेरे ही स्नेह से आप पिता के ऊपर चढ़ाई नहीं कर सकते, और पितरों के ऋण से उद्धार नहीं पा रहे है। इस जन्म में तो आपसे उद्धार नहीं हो सकती और होने की इच्छा भी नहीं—कभी, किसी भी जन्म में। चित्तौर-अधिष्ठात्री देवी ने मुझे स्वप्न में जो आज्ञा दी है, मै उसी कार्य के लिये रुकी हूँ। पिता इस समय चित्तौर में नहीं है, इससे यह न समझिये कि मै आपको कायर समझती हूँ, किन्तु इसलिये कि युद्ध में उनके न रहने से उनकी कोई शारीरिक क्षति नहीं होगी। मेरे कारण जिसे आप बचाते हैं, वह बात बच जायगी। सरदारों से रक्षित चित्तौर दुर्ग के वीर सैनिकों के साथ सम्मुख युद्ध में इस समय विजय प्राप्त कर सकते हैं। मुझे निश्चय है, भवानी आपकी रक्षा करेगी। और, मुझे चित्तौर से अपने साथ लिवा

न जाकर यहीं सिंहासन पर बैठिये । दासी चरण-सेवा करके कृतार्थ होगी।

३

चित्तौर-दुर्ग के सिंहद्वार पर एक सहस्र राजपूत-सवार और उतने ही भील-धनुर्धर पदातिक उन्मुक्त शस्त्र लिये हुए महाराणा हम्मीर की जय का भीम-नाद कर रहे है।

दुर्ग-रक्षक सचेष्ट होकर बुर्जियों पर से अग्नि-वर्षा करा रहा है, किन्तु इन दृढ़प्रतिज्ञ वीरों को हटाने में असमर्थ है। दुर्गद्वार बन्द है। आक्रमणकारियो के पास दुर्गद्वार तोड़ने का कोई साधन नही है, तो भी वे अदम्य उत्साह से आक्रमण कर रहे है। वीर हम्मीर कतिपय उत्साही वीरों के साथ अग्रसर होकर प्राचीर पर चढ़ने का उद्योग करने लगे, किन्तु व्यर्थ, कोई फल नहीं हुआ। भीलों की बाण-वर्षा से हम्मीर का शत्रुपक्ष निर्बल होता था, पर वे सुरक्षित थे। चारों ओर भीषण हत्या-काण्ड हो रहा है। अकस्मात् दुर्ग का सिंहद्वार सशब्द खुला।

हम्मीर की सेना ने समझा कि शत्रु मैदान में युद्ध करने के लिये आ गये, बड़े उल्लास से आक्रमण किया गया। किन्तु देखते हैं तो सामने एक सौ क्षत्राणियाँ हाथ में तलवार लिये हुए दुर्ग के भीतर खड़ी है! हम्मीर पहले तो संकुचित हुए, फिर जब देखा कि स्वयं राजकुमारी ही उन क्षत्राणियों की नेतृ हैं और उनके हाथ में भी तलवार है, तो वह आगे बढ़े। राजकुमारी ने प्रणाम करके तलवार महाराणा के हाथों में दे डी, राजपूतों ने भीम नाद के साथ एकलिंग 'की जय' घोषित किया।

वीर हम्मीर अग्रसर नहीं हो रहे हैं। दुर्ग से रक्षक ससैन्य उसी स्थान पर आ गया, किन्तु वहाँ का दृश्य देखकर वह भी अवाक् हो गया। हम्मीर ने कहा—सेनापते! मैं इसी तरह दुर्ग-अधिकार पा तुम्हें बन्दी नहीं करना चाहता, तुम ससैन्य स्वतंत्र हो। यदि इच्छा हो, तो युद्ध करो। चित्तौर-

दुर्ग राणा-वंश का है। यदि हमारा होगा, तो एकलिंग-भगवान की कृपा से उसे हम हस्तगत करेंगे ही।

दुर्ग-रक्षक ने कुछ सोचकर कहा--भगवान की इच्छा है कि आपको आपका पैतृक दुर्ग मिले, उसे कौन रोक सकता है? सम्भव है कि इसमें राजपूतों की भलाई हो। इससे बन्धुओं का रक्तपात हम नहीं कराना चाहते। आपको चित्तौर का सिंहासन सुखद हो, देश की श्री-वृद्धि हो, हिन्दुओं का सूर्य मेवाड़-गगन में एक बार फिर उदित हो। भील, राजपूत, शत्रुओं ने मिलकर महाराणा का जयनाद किया, दुन्दुभी बज उठी। मंगल-गान के साथ सपत्नीक हम्मीर पैतृक सिंहासन पर आसीन हुए। अभि-वादन ग्रहण कर लेने पर महाराणा ने महिषी से कहा--क्या अब भी तुम कहोगी कि तुम हमारे योग्य नहीं हो?

अशोक

पूत-सलिला भागीरथी के तट पर चन्द्रालोक में महाराज चक्रवर्ती अशोक टहल रहे है। थोड़ी दूर पर एक युवक खड़ा है। सुधाकर की किरणों के साथ नेत्र-ताराओं को मिलाकर स्थिर दृष्टि से महाराज ने कहा—विजयकेतु, क्या यह बात सच है कि जैन लोगों ने हमारे बौद्ध-धर्माचार्य होने का जनसाधारण में प्रवाद फैलाकर उन्हे हमारे विरुद्ध उत्तेजित किया है और पौण्ड्रवर्धन में एक बुद्धमूर्ति तोड़ी गयी है ?

विजयकेतु—महाराज, क्या आपसे भी कोई झूठ बोलने का साहस कर सकता है ?

अशोक—मनुष्य के कल्याण के लिये हमने जितना उद्योग किया, क्या वह सब व्यर्थ हुआ ? बौद्धधर्म को हमने क्यों प्रधानता दी ? इसीलिये कि शान्ति फैलेगी, देश में द्वेष का नाम भी न रहेगा; और उसी शान्ति की छाया में समाज अपने वाणिज्य, शिल्प और विद्या की उन्नति करेगा। पर नहीं, हम देख रहे है कि हमारी कामना पूर्ण होने में अभी अनेक बाधाएँ है। हमें पहले उन्हें हटाकर मार्ग प्रशस्त करना चाहिये।

विजयकेतु—देव ! आपकी क्या आज्ञा है ?

अशोक—विजयकेतु, भारत में एक समय वह था, जब कि इसी अशोक के नाम से लोग काँप उठते थे। क्यों ? इसीलिये कि वह बड़ा कठोर शासक था। पर वही अशोक जब से बौद्ध कहकर सर्वत्र प्रसिद्ध हुआ है, उसके शासन को लोग कोमल कहकर भूलने लग गये हैं। अस्तु, तुमको चाहिये कि अशोक का आतंक एक बार फिर फैला दो; और यह आज्ञा प्रचारित कर दो कि जो — जैनो का साथी होगा, वह अपराधी होगा;

और जो एक जैन का सिर काट लावेगा, वह पुरस्कृत किया जावेगा।

विजयकेतु—(काँपकर) जो महाराज की आज्ञा !

अशोक—जाओ, शीघ्र जाओ।

विजयकेतु चला गया। महाराज अभी वहीं खड़े हैं। नूपुर का कल-नाद सुनाई पड़ा। अशोक ने चौंककर देखा, तो बीस-पचीस दासियों के साथ महारानी तिष्यरक्षिता चली आ रही हैं।

अशोक—प्रिये ! तुम यहाँ कैसे ?

तिष्यरक्षिता—प्राणनाथ ! शरीर से कहीं छाया अलग रह सकती है ? बहुत देर हुई, मैंने सुना था कि आप आ रहे हैं; पर बैठे-बैठे जी घबड़ा गया कि आने में क्यों देर हो रही है। फिर दासी से ज्ञात हुआ कि आप महल के नीचे बहुत देर से टहल रहे है। इसीलिये मै स्वयं आपके दर्शन के लिये चली आई। अब भीतर चलिये !

अशोक—मैं तो आ ही रहा था। अच्छा, चलो।

अशोक और तिष्यरक्षिता समीप के सुन्दर प्रासाद की ओर बढ़े। दासियाँ पीछे थीं।

राजकीय कानन में अनेक प्रकार के वृक्ष, सुरभित सुमनों से भरे झूम रहे हैं। कोकिला भी कूक-कूक कर आम की डालों को हिलाये देती है। नव-वसन्त का समागम है। मलयानिल इठलाता हुआ कुसुम-कलियों को ठुकराता जा रहा है।

इसी समय कानन-निकटस्थ शैल के झरने के पास बैठकर एक युवक जल-लहरियों की तरंग-भंगी देख रहा है। युवक बड़े सरल विलोकन से कृत्रिम जलप्रपात को देख रहा है। उसकी मनोहर लहरियाँ जो बहुत ही जल्दी-जल्दी लीन हो स्रोत में मिलकर सरल पथ का अनुकरण करती है, उसे बहुत ही भली मालूम हो रही हैं। पर युवक को यह नहीं मालूम कि

उसकी सरल दृष्टि और सुन्दर अवयव से विवश होकर एक रमणी अपने परम पवित्र पद से च्युत होना चाहती है ।

देखो, उस लता-कुंज में, पत्तियों की ओट में, दो नीलमणि के समान कृष्ण-तारा चमककर किसी अदृश्य आश्चर्य का पता बता रहे हैं। नहीं-नहीं, देखो, चन्द्रमा में भी कहीं तारा रहते है ? वह तो किसी सुन्दरी के मुख-कमल का आभास है ।

युवक अपने आनन्द में मग्न है । उसे इसका कुछ भी ध्यान नहीं है कि कोई व्याध उसकी ओर अलक्षित होकर वाण चला रहा है । युवक उठा, और उसी कुंज की ओर चला । किसी प्रच्छन्न शक्ति की प्रेरणा से वह उसी लता-कुंज की ओर बढ़ा । किन्तु उसकी दृष्टि वहाँ जब भीतर पड़ी, तो वह अवाक् हो गया । उसके दोनों हाथ आप जुट गये । उसका सिर स्वयं अवनत हो गया ।

रमणी स्थिर होकर खड़ी थी । उसके हृदय में उद्वेग और शरीर में कम्प था । धीरे-धीरे उसके होंठ हिले और कुछ मधुर शब्द निकले । पर वे शब्द स्पष्ट होकर वायुमण्डल में लीन हो गये । युवक का सिर नीचे ही था । फिर युवती ने अपने को सँभाला, और बोली––कुनाल, तुम यहाँ कैसे ? अच्छे तो हो ?

माताजी की कृपा से––उत्तर में कुनाल ने कहा ।

युवती मंद मुस्कान के साथ बोली––मै तुम्हें बहुत देर से यहाँ छिपकर देख रही हूँ ।

कुनाल–महारानी तिष्यरक्षिता को छिपकर मुझे देखने की क्या आवश्यकता है ?

तिष्यरक्षिता–(कुछ कम्पित स्वर से) तुम्हारे सौन्दर्य से विवश होकर ।

कुनाल–(विस्मित तथा भीत होकर) पुत्र का सौन्दर्य तो माता ही का दिया हुआ है ।

तिष्यरक्षिता–नहीं कुनाल, मैं तुम्हारी प्रेम-भिखारिनी हूँ, राजा-रानी नहीं हूँ; और न तुम्हारी माता हूँ ।

कुनाल––(कुंज से बाहर निकलकर) माताजी, मेरा प्रणाम ग्रहण कीजिए, और अपने इस पाप का शीघ्र प्रायश्चित्त कीजिये । जहाँ तक सम्भव होगा, अब आप इस पाप-मुख को कभी न देखेंगी ।

इतना कहकर शीघ्रता से वह युवक राजकुमार कुनाल, अपनी विमाता की बात सोचता हुआ, उपवन के बाहर निकल गया । पर तिष्यरक्षिता किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर वहीं तब तक खड़ी रही, जब तक किसी दासी के भूषण-शब्द ने उसकी मोहनिद्रा को भंग नहीं किया ।

श्रीनगर के समीपवर्त्ती कानन में एक कुटीर के द्वार पर कुनाल बैठा हुआ ध्यानमग्न है । उसकी सुशील पत्नी उसी कुटीर में कुछ भोजन बना रही है ।

कुटीर स्वच्छ तथा उसकी भूमि परिष्कृत है । शान्ति की प्रबलता के कारण पवन भी उस समय धीरे-धीरे चल रहा है ।

किन्तु वह शान्ति देर तक न रही, क्योंकि एक दौड़ता हुआ मृगशावक कुनाल की गोद में आ गिरा, जिससे उसके ध्यान में विघ्न हुआ, और वह खड़ा हो गया । कुनाल ने उस मृग-शावक को देखकर समझा कि कोई व्याध भी इसके पीछे आता ही होगा । पर जब कोई उसे न देख पड़ा, तो उसने उस मृगशावक को अपनी स्त्री 'धर्मरक्षिता' को देकर कहा––प्रिये ! क्या तुम इसको बच्चे की तरह पालोगी ?

धर्मरक्षिता––प्राणनाथ, हमारे-ऐसे वनचारियों को ऐसे ही बच्चे चाहिये ।

कुनाल––प्रिये ! तुमको हमारे साथ बहुत कष्ट है ।

धर्मरक्षिता–नाथ, इस स्थान पर यदि सुख न मिला, तो मैं समझूँगी

कि संसार में कहीं भी सुख नहीं है ।

कुनाल——किन्तु प्रिये, क्या तुम्हें वे सब राज-सुख याद नहीं आते ? क्या उनकी स्मृति तुम्हें नहीं सताती ? और, क्या तुम अपनी मर्म-वेदना से निकलते हुए आँसुओं को रोक नहीं लेतीं ? या वे सचमुच है ही नहीं ?

धर्मरक्षिता–प्राणाधार ! कुछ नहीं है । यह सब आपका भ्रम है। मेरा हृदय जितना इस शान्त वन में आनन्दित है, उतना कहीं भी न रहा। भला ऐसे स्वभाव-वर्धित सरल-सीधे और सुमनवाले साथी कहाँ मिलते ? ऐसी मृदुला लताएँ, जो अनायास ही चरण को चूमती है, कहाँ उस जन-रव से भरे राजकीय नगर में मिली थीं ? नाथ, और सच कहना, (मृग को चूमकर) ऐसा प्यारा शिशु भी तुम्हें आज तक कहीं मिला था ? तिस पर भी आपको अपनी विमाता की कृपा से जो दुख मिलता था, वह भी यहाँ नहीं है । फिर ऐसा सुखमय जीवन और कौन होगा ?

कुनाल के नेत्र आँसुओं से भर आये, और वह उठकर टहलने लगे । धर्मरक्षिता भी अपने कार्य में लगी । मधुर पवन भी उस भूमि में उसी प्रकार चलने लगा । कुनाल का हृदय अशान्ति हो उठा, और वह टहलता हुआ कुछ दूर निकल गया । जब नगर का समीपवर्त्ती प्रान्त उसे दिखाई पड़ा, तब वह रुक गया और उसी ओर देखने लगा ।

पाँच-छः मनुष्य दौड़ते हुए चले आ रहे है। वे कुनाल के पास पहुँचना ही चाहते थे कि उनके पीछे बीस अश्वारोही देख पड़े । वे सब-के-सब कुनाल के समीप पहुँचे । कुनाल चकित दृष्टि से उन सब को देख रहा था ।

आगे दौड़कर आनेवालों ने कहा——महाराज, हम लोगों को बचाइये ।

कुनाल उन लोगों को पीछे करके आप आगे डटकर खड़ा हो गया । वे अश्वारोही भी उस युवक कुनाल के अपूर्व तेजोमय स्वरूप को देखकर

सहमकर, उसी स्थान पर खड़े हो गये। कुनाल ने उन अश्वारोहियों से पूछा—तुम लोग इन्हें क्यों सता रहे हो? क्या इन लोगों ने कोई ऐसा कार्य किया है, जिससे ये लोग न्यायतः दण्डभागी समझे गये हैं?

एक अश्वारोही, जो उन लोगों का नायक था, बोला—हम लोग राजकीय सैनिक है और राजा की आज्ञा से इन विधर्मी जैनियों का बध करने के लिये आये है। पर आप कौन है, जो महाराज चक्रवर्त्ती देवप्रिय अशोकदेव की आज्ञा का विरोध करने पर उद्यत है?

कुनाल—चक्रवर्त्ती अशोक! वह कितना बड़ा राजा है?

नायक—मूर्ख! क्या तू अभी तक महाराज अशोक का पराक्रम नहीं जानता, जिन्होंने अपने प्रचण्ड भुजदंड के बल से कलिंग-विजय किया है? और, जिनकी राज्यसीमा दक्षिण में केरल और मलयगिरि, उत्तर में सिन्धुकोश-पर्वत, तथा पूर्व और पश्चिम में किरात-देश और पटल है! जिनकी मैत्री के लिये यवन-नृपति लोग उद्योग करते रहते हैं, उन महाराज को तू भली भांति नहीं जानता?

कुनाल—परन्तु इससे भी बड़ा कोई साम्राज्य है, जिसके लिये किसी राज्य की मैत्री की आवश्यकता नहीं है।

नायक—इस विवाद की आवश्यकता नहीं है, हम अपना काम करेंगे।

कुनाल—तो क्या तुम लोग इन अनाथ जीवों पर कुछ दया न करोगे?

इतना कहते-कहते राजकुमार को कुछ क्रोध आ गया, नेत्र लाल हो गये। नायक उस तेजस्वी मूर्त्ति को देखकर एक बार फिर सहम गया।

कुनाल ने कहा—अच्छा, यदि तुम न मानोगे, तो यहाँ के शासक से जाकर कहो कि राजकुमार कुनाल तुम्हें बुला रहे हैं।

नायक सिर झुकाकर कुछ सोचने लगा। तब उसने अपने एक साथी

की ओर देखकर कहा––जाओ, इन बातों को कहकर, दूसरी आज्ञा लेकर जल्द आओ।

अश्वारोही शीघ्रता से नगर की ओर चला। शेष सब लोग उसी स्थान पर खड़े थे।

थोड़ी देर में उसी ओर से दो अश्वारोही आते हुए दिखाई पड़े। एक तो वही था, जो भेजा गया था, और दूसरा उस प्रदेश का शासक था। समीप आते ही वह घोड़े पर से उतर पड़ा और कुनाल का अभिवादन करने के लिये बढ़ा। पर कुनाल ने रोक कर कहा––बस, हो चुका, मैने आपको इसलिये कष्ट दिया है कि इन निरीह मनुष्यों की क्यो हिंसा की जा रही है ?

शासक––राजकुमार ! आपके पिता की आज्ञा ही ऐसी है, और आपका यह वेश क्यों है ?

कुनाल––इसके पूछने की कोई आवश्यकता नहीं, पर क्या तुम इन लोगो को मेरे कहने से छोड़ सकते हो ?

शासक––(दुःखित होकर) राजकुमार, आपकी आज्ञा हम कैसे टाल सकते हैं, (ठहरकर) पर एक और बड़े दुःख की बात है।

कुनाल––वह क्या ?

शासक ने एक पत्र अपने पास से निकालकर कुनाल को दिखलाया। कुनाल उसे पढ़कर चुप रहा, और थोड़ी देर के बाद बोला––तो तुमको इस आज्ञा का पालन अवश्य करना चाहिये।

शासक––पर, यह कैसे हो सकता है ?

कुनाल––जैसे हो, वह तो तुम्हें करना ही होगा।

शासक––किन्तु राजकुमार, आपके इस देव-शरीर के दो नेत्र-रत्न निकालने का बल मेरे हाथों में नहीं है। हाँ, मै अपने इस पद का त्याग कर सकता हूँ।

कुनाल—अच्छा, तो तुम मुझे इन लोगो के साथ महाराज के समीप भेज दो।

शासक ने कहा—जैसी आज्ञा।

पौण्ड्रवर्धन नगर में हाहाकार मचा हुआ है। नगर-निवासी प्रायः उद्विग्न हो रहे हैं। पर विशेषकर जैन लोगों ही में खलबली मची हुई है। जैन-रमणियाँ जिन्होंने कभी घर के बाहर पैर भी नही रक्खा था, छोटे शिशुओं को लिये हुए भाग रही हैं। पर जायँ कहाँ? जिधर देखती हैं, उधर ही सशस्त्र उन्मत्त काल बौद्ध लोग उन्मत्तों की तरह दिखाई पड़ते है। देखो, वह स्त्री, जिसके केश परिश्रम से खुल गये है—गोद का शिशु अलग मचल कर रो रहा है, थककर एक वृक्ष के नीचे बैठ गयी है; अरे देखो! दुष्ट निर्दय वहाँ भी पहुँच गये, और उस स्त्री को सताने लगे।

युवती ने हाथ जोड़कर कहा—आप लोग दुःख मत दीजिये। फिर उसने एक-एक करके अपने सब आभूषण उतार दिये और वे दुष्ट उन सब अलंकारों को लेकर भाग गये। इधर वह स्त्री निद्रा से क्लान्त होकर उसी वृक्ष के नीचे सो गयी।

उधर देखिये, वह एक रथ चला जा रहा है, और उसके पर्दे हटाकर बता रहे हैं कि उसमें स्त्री और पुरुष तीन-चार बैठे है। पर सारथी उस ऊँची-नीची पथरीली भूमि में भी उन लोगों की ओर बिना ध्यान किये रथ शीघ्रता से लिये जा रहा है। सूर्य की किरणे पश्चिम में पीली हो गयी है। चारों ओर उस पथ में शान्ति है। केवल उसी रथ का शब्द सुनाई पड़ता है, जो अभी उत्तर की ओर चला जा रहा है।

[illegible] रथ सरोवर के समीप पहुँचा और रथ के घोड़े [illegible] हुए थककर खड़े हो गये। अब सारथी भी कुछ न कर सका और उसको रथ के नीचे उतरना पड़ा।

रथ को रुका जानकर भीतर से एक पुरुष निकला और उसने सारथी से पूछा——क्यों, तुमने रथ क्यों रोक दिया ?

सारथी——अब घोड़े नहीं चल सक्ते ।

पुरुष——तब तो फिर बड़ी विपत्ति का सामना करना होगा; क्योंकि पीछा करनेवाले उन्मत्त सैनिक आ ही पहुँचेंगे ।

सारथी——तब क्या किया जाय ? (सोचकर) अच्छा, आप लोग इस समीप की कुटी में चलिये, यहाँ कोई महात्मा है, वह अवश्य आप लोगों को आश्रय देंगे ।

पुरुष ने कुछ सोचकर सब आरोहियों को रथ पर से उतारा, और वे सब लोग उसी कुटी की ओर अग्रसर हुए ।

कुटी के बाहर एक पत्थर पर अधेड़ मनुष्य बैठा हुआ है । उसका परिधेय वस्त्र भिक्षुओं के समान है । रथ पर के लोग उसी के सामने जाकर खड़े हुए । उन्हे देखकर वह महात्मा बोले——आप लोग कौन है और क्यों आये है ?

उसी पुरुष ने आगे बढ़कर, हाथ जोड़कर कहा——महात्मन्, हम लोग जैन है और महाराज अशोक की आज्ञा से जैन लोगों का सर्वनाश किया जा रहा है । अतः हम लोग प्राण के भय से भाग कर अन्यत्र जा रहे है । पर मार्ग में घोड़े थक गये, अब ये इस समय चल नहीं सक्ते । क्या आप थोड़ी देर तक हम लोगों को आश्रय दीजियेगा ?

महात्मा थोड़ी देर सोचकर बोला——अच्छा आप, लोग इसी कुटी में चले जाइये ।

स्त्री-पुरुषों ने आश्रय पाया ।

अभी उन लोगों को बैठे थोड़ी ही देर हुई है कि अकस्मात् अश्व-पद-शब्द ने सबको चकित और भयभीत कर दिया । देखते-देखते दस अश्वारोही उस कुटी के सामने पहुँच गये । उनमें से एक महात्मा की ओर लक्ष्य करके बोला——ओ भिक्षु, क्या तूने अपने यहाँ भागे हुए जैन विधर्मियों

को आश्रय दिया है? समझ रख, तू हम लोगों से बहाना नहीं कर सकता, क्योंकि उनका रथ इस बात का ठीक पता दे रहा है।

महात्मा--सैनिको, तुम उन्हें लेकर क्या करोगे? मैंने अवश्य उन दुखियों को आश्रय दिया है। क्यों व्यर्थ नर-रक्त से अपने हाथों को रंजित करते हो?

सैनिक अपने साथियों की ओर देखकर बोला--यह दुष्ट भी जैन ही है, ऊपरी बौद्ध बना हुआ है; इसे भी मारो।

'इसे भी मारो' का शब्द गूंज उठा, और देखते-देखते उस महात्मा का सिर भूमि में लोटने लगा।

इस कांड को देखते ही कुटी के स्त्री पुरुष चिल्ला उठे। उन नर-पिशाचों ने एक को भी न छोड़ा! सबकी हत्या की।

अब, सब सैनिक धन खोजने लगे। मृत स्त्री-पुरुषों के आभूषण उतारे जाने लगे। एक सैनिक, जो उस महात्मा की ओर झुका था, चिल्ला उठा। सबका ध्यान उसी ओर आकर्षित हुआ। सब सैनिकों ने देखा, उसके हाथ में एक अँगूठी है, जिस पर लिखा है 'वीताशोक'!

महाराज अशोक के भाई, जिनका पता नहीं लगता था, वही 'वीताशोक' मारे गये! चारों ओर उपद्रव शान्त है। पौण्ड्रवर्धन नगर प्रशान्त समुद्र की तरह हो गया है।

महाराज अशोक पाटलिपुत्र के साम्राज्य-सिंहासन पर विचारपति होकर बैठे हैं। राजसभा की शोभा तो कहते नहीं बनती। सुवर्ण-रचित बेल-बूटों की कारीगरी से, जिनमें मणि-माणिक्य स्थानानुकूल बिठाये गये हैं--मौर्य-सिंहासन-मंदिर भारतवर्ष का वैभव दिखा रहा है, जिसे देखकर पारसीक सम्राट् 'दारा' के सिंहासन-मंदिर को ग्रीक लोग तुच्छ दृष्टि से देखते थे।

धर्माधिकार, प्राड्विवाक, महामात्य, धर्म-महामात्य रज्जुक, और सेनापति, सब अपने-अपने स्थान पर स्थित हैं। राजकीय तेज का सन्नाटा सब को मौन किये है।

देखते-देखते एक स्त्री और एक पुरुष उस सभा में आये। सभास्थित सब लोगों की दृष्टि को पुरुष के अवनत तथा बड़े-बड़े नेत्रों ने आकर्षित कर लिया। किन्तु सब नीरव हैं। युवक और युवती ने मस्तक झुकाकर महाराज को अभिवादन किया।

स्वयं महाराज ने पूछा--तुम्हारा नाम ?

उत्तर--कुनाल।

प्र०--पिता का नाम ?

उ०--महाराज चक्रवर्ती धर्माशोक।

सब लोग उत्कण्ठा और विस्मय से देखने लगे कि अब क्या होता है, पर महाराज का मुख कुछ भी विकृत न हुआ, प्रत्युत और भी गम्भीर स्वर से प्रश्न करने लगे--

प्र०--तुमने कोई अपराध किया है ?

उ०--अपनी समझ से तो मैंने अपराध से बचने का उद्योग किया था।

प्र०--फिर तुम किस तरह अपराधी बनाये गये ?

उ०--तक्षशिला के महासामन्त से पूछिये।

महाराज की आज्ञा होते ही शासक ने अभिवादन के उपरान्त एक पत्र उपस्थित किया, जो अशोक के कर में पहुँचा।

महाराज ने क्षण-भर में महामात्य से फिरकर पूछा--यह आज्ञा-पत्र कौन ले गया था, उसे बुलाया जाय।

पत्रवाहक भी आया और कम्पित स्वर से अभिवादन करते हुए बोला--धर्मावतार, यह पत्र मुझे महादेवी तिष्यरक्षिता के महल से मिला था, और

आज्ञा हुई थी कि इसे शीघ्र तक्षशिला के शासक के पास पहुँचाओ।

महाराज ने शासक की ओर देखा। उसने हाथ जोड़कर कहा—महाराज, यही आज्ञा-पत्र लेकर गया था।

महाराज ने गम्भीर होकर अमात्य से कहा—तिष्यरक्षिता को बुलाओ।

महामात्य ने कुछ बोलने की चेष्टा की, किन्तु महाराज के भ्रूकुटिभंग ने उन्हें बोलने से निरस्त किया; अब वह स्वयं उठे और चले।

७

महादेवी तिष्यरक्षिता राजसभा में उपस्थित हुईं। अशोक ने गम्भीर स्वर से पूछा—यह तुम्हारी लेखनी से लिखा गया है? क्या उस दिन तुमने इसी कुकर्म के लिये राजमुद्रा छिपा ली थी? क्या कुनाल के बड़े-बड़े सुन्दर नेत्रों ने ही तुम्हें अपने निकलवाने की आज्ञा देने के लिये विवश किया था? अवश्य तुम्हारा ही यह कुकर्म है। अस्तु, तुम्हारी-ऐसी स्त्री को पृथ्वी के ऊपर नहीं, किन्तु भीतर रहना चाहिये।

सब लोग काँप उठे। कनाल ने आगे बढ़ घटने टेक दिये और कहा—क्षमा।

अशोक ने गम्भीर स्वर से कहा—नहीं।

तिष्यरक्षिता उन्हीं पुरुषों के साथ गयी, जो लोग उसे जीवित समाधि देनेवाले थे। महामात्य ने राजकुमार कुनाल को आसन पर बैठाया और धर्मरक्षिता महल में गयी।

महामात्य ने एक पत्र और एक अँगूठी महाराज को दी। यह पौण्ड्र-वर्धन के शासक का पत्र तथा वीताशोक की अँगूठी थी।

पत्र-पाठ करके और मुद्रा को देखकर वही कठोर अशोक विह्वल हो गये, और अवसन्न होकर सिंहासन पर गिर पड़े

उसी दिन से कठोर अशोक ने हत्या की आज्ञा बन्द कर दी. स्थान-

स्थान पर जीवहिंसा न करने की आज्ञा पत्थरों पर खुदवा दी गई।

कुछ ही काल के बाद महाराज अशोक ने उद्विग्न चित्त को शांत करने के लिये भगवान् बुद्ध के प्रसिद्ध स्थानों को देखने के लिये धर्म-यात्रा की।

गुलाम

१

फूल नहीं खिलते है, बेले की कलियाँ मुरझाई जा रही हैं। समय में नीरद ने सींचा नहीं, किसी माली की भी दृष्टि उस ओर नहीं घूमी; अकाल मे बिना खिले कुसुम-कोरक म्लान होना ही चाहता है। अकस्मात् डूबते सूर्य की पीली किरणों की आभा से चमकता हुआ एक बादल का टुकड़ा स्वर्ण-वर्षा कर गया। परोपकारी पवन उन छींटों को ढकेलकर उन्हे एक कोरक पर लाद गया। भला इतना भार वह कैसे सह सकता है! सब ढुलककर धरणी पर गिर पड़े। कोरक भी कुछ हरा हो गया।

यमुना के बीच धारा में एक छोटी, पर बहुत ही सुन्दर तरणी, मन्द पवन के सहारे धीरे-धीरे बह रही है। सामने के महल से अनेक चन्द्रमुख निकलकर उसे देख रहे है। चार कोमल सुन्दरियाँ डाँड़े चला रही है, और एक बैठी हुई छोटी सितारी बजा रही है। सामने, एक भव्य पुरुष बैठा हुआ उसकी ओर निर्निमेष दृष्टि से देख रहा है।

पाठक! यह प्रसिद्ध शाहआलम दिल्ली के बादशाह हैं। जलक्रीड़ा हो रही है।

सान्ध्य-सूर्य की लालिमा जीनत-महल के अरुण मुख-मंडल की शोभा और भी बढ़ा रही है। प्रणयी बादशाह उस आतप-मंडित मुखारविन्द की ओर सतृष्ण नयन से देख रहे हैं, जिस पर बार-बार गर्व और लज्जा का दुबारा रंग चढ़ता-उतरता है, और इसी कारण सितार का स्वर भी बहुत शीघ्र चढ़ता-उतरता है। संगीत, तार पर चढ़कर दौड़ता हुआ, व्याकुल होकर घूम रहा है; क्षण-भर भी विश्राम नहीं।

जीनत के मुखमंडल पर स्वेद-विन्दु झलकने लगे। बादशाह ने

व्याकुल होकर कहा—बस करो प्यारी जीनत ! बस करो ! बहुत अच्छा बजाया, वाह, क्या बात है ! साकी, एक प्याला शीराजी शर्बत !

'हुजूर आया'—कहता हुआ एक सुकुमार बालक सामने आया, हाथ में पान-पात्र था। उस बालक की मुख-कान्ति दर्शनीय थी। भरा प्याला छलकना चाहता था, इधर घुँघराली अलकें उसकी आँखों पर बरजोरी एक पर्दा डालना चाहती थीं। बालक प्याले को एक हाथ में लेकर जब केश-गुच्छ को हटाने लगा, तब जीनत और शाहआलम दोनों चकित होकर देखने लगे। अलकें अलग हुईं। बेगम ने एक ठंडी साँस ली। शाहआलम के मुख से भी एक आह निकलना ही चाहती थी, पर उसे रोककर निकल पड़ा—'बेगम को दो'।

बालक ने दोनों हाथों से पान-पात्र जीनत की ओर बढ़ाया। बेगम ने उसे लेकर पान कर लिया।

नहीं कह सकते कि उस शर्बत ने बेगम को कुछ तरी पहुँचाई या गर्मी; किन्तु हृदय-स्पन्दन अवश्य कुछ बढ़ गया। शाहआलम ने झुककर कहा—एक और !

बालक विचित्र गति से पीछे हटा और थोड़ी देर में दूसरा प्याला लेकर उपस्थित हुआ। पान-पात्र निश्शेष कर शाहआलम ने हाथ कुछ और फैला दिया, और बालक की ओर इंगित करके बोले—कादिर, जरा उँगलियाँ तो बुला दे।

बालक अदब से सामने बैठ गया और उनकी उँगलियों को हाथ में लेकर बुलाने लगा।

मालूम होता है कि जीनत को शर्बत ने कुछ ज्यादा गर्मी पहुँचाई। वह छोटे बजरे के मेहराब में से झुककर यमुना-जल छूने लगी। कलेजे के नीचे एक मखमली तकिया मसली जाने लगी, या न मालूम वही कामिनी के वक्षस्थल को पीड़न करने लगी।

शाहआलम की उँगलियाँ, उस कोमल बाल-रवि-कर-समान स्पर्श से, कलियों की तरह चटकने लगीं। बालक की निर्निमेष दृष्टि आकाश

की ओर थी । अकस्मात् बादशाह ने कहा——मीना ! ख्वाजा-सरा से कह देना कि इस कादिर को अपनी खास तालीम में रखे, और उसके सुपुर्द कर देना ।

एक डाँड़े चलानेवाली ने झुककर कहा——बहुत अच्छा हुजूर !

बेगम ने अपने सोने से तकिये को और दबा दिया; किन्तु वह कुछ न बोल सकी, दबकर रह गयी ।

उपर्युक्त घटना को बहुत दिन बीत गये । गुलाम कादिर अब अच्छा युवक मालूम होने लगा । उसका उन्नत स्कन्ध, भरी-भरी बाहें और विशाल वक्षस्थल बड़े सुहावने हो गये । किन्तु कौन कह सकता है कि वह युवक है । ईश्वरीय नियम के विरुद्ध उसका पुंसत्व छीन लिया गया है ।

कादिर, शाहआलम का प्यारा गुलाम है । उसकी तूती बोल रही है, सो भी कहाँ ? शाही नौबतखाने के भीतर ।

दीवाने-आम में अच्छी सज-धज है । आज कोई बड़ा दरबार होने वाला है । सब पदाधिकारी अपने योग्यतानुसार वस्त्राभूषण से सजकर अपने-अपने स्थान को सुशोभित करने लगे । शाहआलम भी तख्त पर बैठ गये । तुला-दान होने के बाद बादशाह ने कुछ लोगों का मनसब बढ़ाया और कुछ को इनाम दिया । किसी को हर्बे दिये गये; किसी की पदवी बढ़ायी गयी; किसी की तनख्वाह बढ़ी ।

किन्तु बादशाह यह सब करके भी तृप्त नहीं दिखाई पड़ते । उनकी निगाहें किसी को खोज रही है । वे इशारा कर रही है कि उन्ही से काम निकल जाय, रसना को बोलना न पड़े; किन्तु करे क्या ? वह हो नहीं सकता था । बादशाह ने एक तरफ देखकर कहा——गुलाम कादिर !

कादिर अपने कमरे मे कपड़े पहनकर तैयार है, केवल कमरबन्द में एक जड़ाऊ दस्ते का कटार लगाना बाकी है, जिसे बादशाह ने उसे प्रसन्न होकर दिया है । कटार लगाकर एक बार बड़े दर्पण में मुँह देखने

की लालसा से वह उस ओर बढ़ा। दर्पण के सामने खड़ा होकर उसने देखा, अपरूप सौन्दर्य ! किसका ? अपना ही। सचमुच कादिर की दृष्टि अपनी आँखों पर से नहीं हटती। मुग्ध होकर वह अपना रूप देख रहा है !

उसका पुरुषोचित सुन्दर मुख-मंडल तारुण्य-सूर्य के आतप से आलोकित हो रहा है। दोनों भरे हुए कपोल प्रसन्नता से बार-बार लाल हो आते हैं, आँखे हँस रही है। सृष्टि सुन्दरतम होकर उसके सामने विकसित हो रही है।

प्रहरी ने आकर कहा——जहाँपनाह ने दरबार मे याद किया है।

कादिर चौक उठा और उसका रंग उतर गया। वह सोचने लगा कि उसका रूप और तारुण्य कुछ नहीं है, किसी काम के नहीं। मनुष्य की सारी सम्पत्ति उससे जबर्दस्ती छीन ली गयी है।

कादिर का जीवन भार हो उठा। निरभ्र गगन मे पावस-घन घिर उठे। उसका प्राण तलमला उठा, और वह व्याकुल होकर चाहता था कि दर्पण फोड़ दे।

क्षण-भर मे सारी प्रसन्नता मिट्टी मे मिल गयी। जीवन दुःसह हो उठा। दाँत आपस मे घिस उठे और कटार भी कमर से निकलने लगा।

कादिर कुछ शान्त हुआ। कुछ सोचकर धीरे-धीरे दरबार की ओर चला। बादशाह के सामने पहुँचकर यथोचित अभिवादन किया।

शाह०——कादिर ! इतनी देर तक कहाँ रहा ?

कादिर——जहाँपनाह ! गुलाम की खता माफ हो।

शाह०——(हँसते हुए) खता कैसी कादिर ?

कादिर——(जलकर) हुजूर, देर हुई।

शाह०——अच्छा, उसकी सजा दी जायगी।

कादिर——(अदब से) लेकिन हुजूर, मेरा भी कुछ अर्ज है।

बादशाह ने पूछा——क्या ?

कादिर ने कहा—मुझे यही सजा मिले कि मैं कुछ दिनों के लिये देहली से निकाल दिया जाऊँ।

शाहआलम ने कहा—सो तो बहुत बड़ी सजा है कादिर, ऐसा नहीं हो सकता। मैं तुम्हे कुछ इनाम देना चाहता हूँ, ताकि वह यादगार रहे, और तुम फिर ऐसा कुसूर न करो।

कादिर ने हाथ बाँधकर कहा—हुजूर ! इनाम मे मुझे छुट्टी ही मिल जाय, ताकि कुछ दिनों तक मै अपने बूढ़े बाप की खिदमत कर सकूँ।

शाहआलम—(चौंककर) उसकी खिदमत के लिये मेरी दी हुई जागीर काफी है। सहारनपुर मे उसकी आराम से गुजरती है।

कादिर ने गिड़गिड़ाकर कहा—लेकिन जहाँपनाह, लड़का होकर मेरा भी कोई फर्ज है।

शाहआलम ने कुछ सोचकर कहा—अच्छा तुम्हे रुख्सत मिली और यादगार की तरह तुम्हें एक-हजारी मनसब अता किया जाता है, ताकि तुम वहाँ से लौट आने मे फिर देर न करो।

उपस्थित लोग 'करामात', 'हुजूर का एकबाल और बुलन्द हो' की धुन मचाने लगे। गुलाम कादिर अनिच्छा रहते उन लोगो का साथ देता था, और अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करने की कोशिश करता था।

भारत के सपूत, हिन्दुओं के उज्ज्वल रत्न छत्रपति महाराज शिवाजी ने जो अध्यवसाय और परिश्रम किया, उसका परिणाम मराठों को अच्छा मिला, और उन्होंने भी जब तक उस पूर्व-नीति को अच्छी तरह से माना, लाभ उठाया। शाहआलम के दरबार में क्या—भारत मे—आज मराठा-वीर सेंधिया ही नायक समझा जाता है। सेंधिया की विपुल वाहिनी के बल से शाहआलम नाममात्र को दिल्ली के सिंहासन पर बैठे है। बिना सेंधिया के मंजूर किये बादशाह-सलामत रत्ती-भर हिल नहीं सकते।

सेंधिया, दिल्ली और उसके बादशाह के, प्रधान रक्षक है। शाहआलम का मुगल रक्त सर्द हो चुका है।

सेंधिया आपस के झगड़े तय करने के लिये दक्खिन चला गया है। 'मंसूर' नामक कर्मचारी ही इस समय बादशाह का प्रधान सहायक है। शाहआलम का पूरा शुभचिन्तक होने पर भी वह हिन्दू सेंधिया की प्रधानता से भीतर-भीतर जला करता था।

जला हुआ, विद्रोह का झंडा उठाये, इसी समय, गुलाम कादिर रुहेलों के साथ सहारनपुर से आकर दिल्ली के उस पार डेरा डाले पड़ा है। मंसूर उसके लिये हर तरह से तैयार है। एक बार वह भुलावे में आकर चला गया है। अबकी बार उसकी इच्छा है कि वजारत वही करे।

बूढ़े बादशाह संगमर्मर के मीनाकारी किये हुए बुर्ज मे गाव-तकिये के सहारे लेटे हुए हैं। मंसूर सामने हाथ बाँधे खड़ा है। शाहआलम ने भरी हुई आवाज मे पूछा—क्यो मंसूर ! क्या गुलाम कादिर सचमुच दिल्ली पर हमला करके तख्त छीनना चाहता है ? क्या उसको इसीलिए हमने इस मरतबे पर पहुँचाया ? क्या सबका आखिरी नतीजा यही है ? बोलो, साफ कहो। रुको मत, जिसमें कि तुम बात बना सको।

मंसूर—जहाँपनाह ! वह तो गुलाम है। फकत हुजूर की कदमबोसी हासिल करने के लिये आया है। और, उसकी तो यही अर्जी है कि हमारे आका शाहंशाह-हिन्द एक काफिर के हाथ की पुतली न बने रहें। अगर हुक्म दे तो क्या यह गुलाम वह काम नहीं कर सकता ?

शाह०—मंसूर ! इसके माने ?

मंसूर—बन्दःपरवर ! वह दिल्ली की वजारत के लिये अर्ज करता है और गुलामी मे हाजिर होना चाहता है। उसे तो सेंधिया से रंज है, हुजूर तो उसके मेहरबान आका है।

शाह०—(जरा तनकर) हाँ मंसूर, उसे हमने बचपन से पाला है, और इस लायक बनाया।

मंसूर—(मन मे) और उसे आपने ही, खुद-गरजी से—जो काबिले-

नफरत थी—दुनिया के किसी काम का न रक्खा, जिसके लिये वह जी से जला हुआ है।

शाह०—बोलो मंसूर ! चुप क्यों हो ? क्या वह एहसान-फरामोश है ?

मंसूर—हुजूर ! फिर, गुलाम खिदमत मे बुलाया जावे ?

शाह०—वजारत देने मे मुझे कोई उज्र नहीं है। वह सँभाल सकेगा ?

मंसूर—हुजूर अगर वह न सँभाल सकेगा, तो उसको वही झेलेगा। सेंधिया खुद उससे समझ लेगा।

शाह०—हाँ जी, सेंधिया से कह दिया जायगा कि लाचारी से उसको वजारत दी गयी। तुम थे नहीं, उसने जबर्दस्ती यह काम अपने हाथ में लिया।

मंसूर—और इससे मुसलमान रियाया भी हुजूर से खुश हो जावेगी। तो, उसे हुक्म आने का भेज दिया जाय ?

शाह०—बेहतर।

४

दिल्ली के दुर्ग पर गुलाम कादिर का पूर्ण अधिकार हो गया है। बादशाह के कर्मचारियों से सब काम छीन लिया गया है। रुहेलों का किले पर पहरा है। अत्याचारी गुलाम महलों की सब चीजों को लूट रहा है। बेचारी बेगमें अपमान के डर से पिशाच रुहेलों के हाथ, अपने हाथ से अपने आभूषण उतारकर दे रही है। पाशविक अत्याचार की मात्रा अब भी पूर्ण नहीं हुई। दीवाने-खास में सिंहासन पर बादशाह बैठे है। रुहेलों के साथ गुलाम कादिर उसे घेरकर खड़ा है।

शाह०—गुलाम कादिर, अब बस कर ! मेरे हाल पर रहम कर, सब कुछ तूने कर लिया। अब मुझे क्यों नाहक परेशान करता है ?

गुलाम—अच्छा इसी मे है कि अपना छिपा खजाना बता दो।

एक रुहेला—हाँ, हाँ, हम लोगों के लिये भी तो कुछ चाहिये।
शाह०—कादिर ! मेरे पास कुछ नहीं है। क्यों मुझे तकलीफ देता है ?

कादिर—मालूम होता है, सीधी उँगली से घी नहीं निकलेगा।

शाह०—मैने तुझे इस लायक इसीलिये बनाया कि तू मेरी इस तरह बेइज्जती करे ?

कादिर—तुम्हारे-ऐसों के लिये इतनी ही सजा काफी नहीं है। नहीं देखते हो कि मेरे दिल मे बदले की आग जल रही है, मुझे तुमने किस काम का रक्खा ? हाय ! मेरी सारी कार्रवाई फजूल है, मेरा सब तुमने लूट लिया है। बदला कहती है कि तुम्हारा गोश्त मै अपने दाँतों से नोच डालूँ।

शाह०—बस कादिर ! मै अपनी खता कुबूल करता हूँ। उसे माफ कर ! या तो अपने हाथों से मुझे कत्ल कर डाल ! मगर इतनी बेइज्जती न कर !

गुलाम—अच्छा, वह तो किया ही जायगा ! मगर खजाना कहाँ है ?

शाह०—कादिर ! मेरे पास कुछ नहीं है !

गुलाम—अच्छा, तो उतर आएँ तख्त से, देर न करे !

शाह०—कादिर ! मै इसी पर बैठा हूँ जिस पर बैठकर तुझे हुक्म दिया करता था। आ, इसी जगह खंजर से मेरा काम तमाम कर दे।

'वही होगा' कहता हुआ नर-पिशाच कादिर तख्त की ओर बढ़ा। बूढ़े बादशाह को तख्त से घसीटकर नीचे ले आया और उन्हे पटककर छाती पर चढ़ बैठा। खंजर की नोक कलेजे पर रखकर कहने लगा, अब भी अपना खजाना बताओ, तो जान सलामत बच जायगी।

शाहआलम गिड़गिड़ाकर कहने लगे कि ऐसी जिन्दगी की जरूरत नहीं है। अब तू अपना खंजर कलेजे के पार कर !

कादिर—लेकिन इससे क्या होगा ! अगर तुम मर जाओगे, तो

मेरे कलेजे की आग किसे झुलसायेगी; इससे बेहतर है कि मुझसे जैसी चीज छीन ली गयी है, उसी तरह की कोई चीज तुम्हारी भी ली जाय। हाँ, इन्हीं आँखो से मेरी खूबसूरती देखकर तुमने मुझे दुनिया के किसी काम का न रक्खा। लो, मै तुम्हारी आँखे निकालता हूँ, जिससे मेरा कलेजा कुछ ठंडा होगा।

इतना कह, कादिर ने कटार से शाहआलम की दोनों आँखे निकाल लीं। रोशनी की जगह उन गड्ढो से रक्त के फुहारे निकलने लगे। निकली हुई आँखों को कादिर की आँखे प्रसन्नता से देखने लगीं।

जहाँनारा

१

यमुना के किनारेवाले शाही महल में एक भयानक सन्नाटा छाया हुआ है, केवल बार-बार तोपों की गड़गड़ाहट और अस्त्रो की झनकार सुनाई दे रही है। वृद्ध शाहजहाँ मसनद के सहारे लेटा हुआ है, और एक दासी कुछ दवा का पात्र लिए हुए खड़ी है। शाहजहाँ अन्यमनस्क होकर कुछ सोच रहा है, तोपों की आवाज से कभी-कभी चौंक पड़ता है। अकस्मात् उसके मुख से निकल पड़ा—नहीं-नहीं, क्या वह ऐसा करेगा, क्या हमको तख्त-ताऊस से निराश हो जाना चाहिए।

हाँ, अवश्य निराश हो जाना चाहिये।

शाहजहाँ ने सिर उठाकर कहा—कौन? जहाँनारा? क्या यह तुम सच कहती हो?

जहाँनारा—(समीप आकर) हाँ जहाँपनाह! यह ठीक है; क्योंकि आपका अकर्मण्य पुत्र 'दारा' भाग गया, और नमक-हराम 'दिलेर खाँ' क्रूर औरंगजेब से मिल गया, और किला उसके अधिकार में हो गया।

शाहजहाँ—लेकिन जहाँनारा! क्या औरंगजेब क्रूर है? क्या वह अपने बूढ़े बाप की कुछ इज्जत न करेगा? क्या वह मेरे जीते ही तख्त-ताऊस पर बैठेगा?

जहाँनारा—(जिसकी आँखों में अभिमान का अश्रुजल भरा था) जहाँपनाह! आपके इसी पुत्रवात्सल्य ने आपकी यह अवस्था की। औरंगजेब एक नारकीय पिशाच है; उसका किया क्या नहीं हो सकता, एक भले कार्य को छोड़कर।

शाहजहाँ—नही जहाँनारा ! ऐसा मत कहो ।

जहाँनारा—हाँ जहाँपनाह ! मै ऐसा ही कहती हूँ ।

शाहजहाँ—ऐसा ? तो क्या जहाँनारा ! इस बदन में मुगल-रक्त नहीं है ? क्या तू मेरी कुछ भी मदद कर सकती है ?

जहाँनारा—जहाँपनाह की जो आज्ञा हो ।

शाहजहाँ—तो मेरी तलवार मेरे हाथ में दे । जब तक वह मेरे हाथ में रहेगी, कोई भी तख्त-ताऊस मुझसे न छुड़ा सकेगा ।

जहाँनारा आवेश के साथ—'हाँ जहाँपनाह ! ऐसा ही होगा'—कहती हुई वृद्ध शाहजहाँ की तलवार उसके हाथ में देकर खड़ी हो गयी । शाहजहाँ उठा और लड़खड़ाकर गिरने लगा, शाहजादी जहाँनारा ने बादशाह को पकड़ लिया, और तख्त-ताऊस के कमरे की ओर ले चली ।

तख्त-ताऊस पर वृद्ध शाहजहाँ बैठा है, और नकाब डाले जहाँनारा पास ही बैठी हुई है, और कुछ सरदार—जो उस समय वहाँ थे—खड़े है; नकीब भी खड़ा है । शाहजहाँ के इशारा करते ही उसने अपने चिर-भ्यस्त शब्द कहने के लिए मुँह खोला । अभी पहला ही शब्द उसके मुँह से निकला था कि उसका सिर छटककर दूर जा रहा ! सब चकित होकर देखने लगे ।

जिरहबॉतर से लदा हुआ औरंगजेब अपनी तलवार को रूमाल से पोंछता हुआ सामने खड़ा हो गया, और सलाम करके बोला—हुजूर की तबीयत नासाज सुनकर मुझसे न रहा गया; इसलिए हाजिर हुआ ।

शाहजहाँ—(काँपकर) लेकिन बेटा ! इतनी खूँरेजी की क्या जरूरत थी । अभी-अभी वह देखो, बुड्ढे नकीब की लाश लोट रही है । उफ़ ! मुझसे यह नही देखा जाता ! (काँपकर) क्या बेटा, मुझे भी... (इतना कहते-कहते बेहोश होकर तख्त से झुक गया) ।

औरंगजेब—(कड़ककर अपने साथियों से) हटाओ उस नापाक

लाश को !

जहाँनारा से अब न रहा गया, और दौड़कर सुगन्धित जल लेकर वृद्ध पिता के मुख पर छिड़कने लगी।

औरंगजेब--(उधर देखकर) है ! यह कौन है, जो मेरे बूढ़े बाप को पकड़े हुए है ? (शाहजहाँ के मुसाहिबों से) तुम सब बड़े नामाकूल हो; देखते नहीं, हमारे प्यारे बाप की क्या हालत है, और उन्हें अभी भी पलँग पर नहीं लिटाया। (औरंगजेब के साथ-साथ सब तख्त की ओर बढ़े)।

जहाँनारा उन्हें यों बढ़ते देखकर फुरती से कटार निकालकर और हाथ में शाही मुहर किया हुआ कागज निकालकर खड़ी हो गयी और बोली--देखो, इस परवाने के मुताबिक मैं तुम लोगों को हुक्म देती हूँ कि अपनी-अपनी जगह पर खड़े रहो, जब तक मै दूसरा हुक्म न दूँ।

सब उसी कागज की ओर देखने लगे। उसमें लिखा था--इस शख्स का सब लोग हुक्म मानो और मेरी तरह इज्जत करो।

सब उसकी अभ्यर्थना के लिये झुक गये, स्वयं औरंगजेब भी झुक गया, और कई क्षण तक सब निस्तब्ध थे।

अकस्मात् औरंगजेब तनकर खड़ा हो गया और कड़ककर बोला--गिरफ्तार कर लो इस जादूगरनी को। यह सब झूठा फिसाद है, हम सिवा शाहंशाह के और किसी को नहीं मानेंगे।

सब लोग उस औरत की ओर बढ़े। जब उसने यह देखा, तब फौरन अपना नकाब उलट दिया। सब लोगों ने सिर झुका दिया, और पीछे हट गये। औरंगजेब ने एक बार फिर सिर नीचे कर लिया, और कुछ बड़बड़ा कर जोर से बोला--कौन, जहाँनारा, तुम यहाँ कैसे।

जहाँनारा--औरंगजेब ! तुम यहाँ कैसे ?

औरंगजेब--(पलटकर अपने लड़के की तरफ देखकर) बेटा ! मालूम होता है कि बादशाह-बेगम का कुछ दिमाग बिगड़ गया है, नहीं तो

इस बेशर्मी के साथ इस जगह् पर न आतीं। तुम्हें इनकी हिफाजत करनी चाहिये।

जहाँनारा—और औरंगजेब के दिमाग को क्या हुआ है जो वह अपने बाप के साथ इस बेअदबी से पेश आया...

अभी इतना उसके मुँह से निकला ही था कि शाहजादे ने फुरती से उसके हाथ से कटार निकाल लिया और कहा—मै अदब के साथ कहता हूँ कि आप महल में चलें, नहीं तो...

जहाँनारा से यह देखकर न रहा गया। रमणी-सुलभ वीर्य और अस्त्र, क्रन्दन और अश्रु का प्रयोग उसने किया और गिड़गिड़ाकर औरंगजेब से बोली—क्यों औरंगजेब! तुमको कुछ भी दया नहीं है?

औरंगजेब ने कहा—दया क्यों नहीं है बादशाह-बेगम! दारा जैसे तुम्हारा भाई था, वैसा ही मै भी तो भाई ही था, फिर तरफ़दारी क्यों?

जहाँनारा—वह तो बाप का तख्त नहीं लिया चाहता था, उनके हुक्म से सल्तनत का काम चलाता था।

औरंगजेब—तो क्या मै वह काम नहीं कर सकता? अच्छा, बहस की जरूरत नही है। बेगम को चाहिये कि वह महल में जायँ।

जहाँनारा कातर दृष्टि से वृद्ध मूर्च्छित पिता को देखती हुई शाहजादे की बताई राह से जाने लगी।

२

यमुना के किनारे के एक महल में शाहजहाँ पलँग पर पड़ा है, और जहाँनारा उसके सिरहाने बैठी हुई है।

जहाँनारा से जब औरंगजेब ने पूछा कि वह कहाँ रहना चाहती है, तब उसने केवल अपने वृद्ध और हतभागे पिता के साथ रहना स्वीकार किया, और अब वह साधारण दासी के वेश में अपना जीवन अभागे पिता की सेवा मे व्यतीत करती है।

वह भड़कदार शाही पेशवाज अब उसके बदन पर नहीं दिखाई पड़ती,

केवल सादे वस्त्र ही उसके प्रशान्त मुख की शोभा बढ़ाते हैं। चारों ओर उस शाही महल में एक शान्ति दिखलाई पड़ती है। जहाँनारा ने, जो कुछ उसके पास थे, सब सामान गरीबों को बाँट दिये; और अपने निज के बहुमूल्य अलंकार भी उसने पहनना छोड़ दिया। अब वह एक तपस्विनी ऋषिकन्या-सी हो गयी! बात-बात पर दासियों पर वह झिड़की उसमें नहीं रही। केवल आवश्यक वस्तुओं से अधिक उसके रहने के स्थान में और कुछ नहीं है।

वृद्ध शाहजहाँ ने लेटे-लेटे आँख खोलकर कहा——बेटी, अब दवा की कोई जरूरत नहीं है, यादे-खुदा ही दवा है। अब तुम इसके लिये मत कोशिश करना।

जहाँनारा ने रोकर कहा——पिता, जब तक शरीर है, तब तक उसकी रक्षा करनी ही चाहिये।

शाहजहाँ कुछ न बोलकर चुपचाप पड़े रहे। थोड़ी देर तक जहाँनारा बैठी रही; फिर उठी और दवा की शीशियाँ यमुना के जल मे फेंक दीं।

थोड़ी देर तक वहीं बैठी-बैठी वह यमुना का मन्द प्रवाह देखती रही। सोचती थी कि यमुना का प्रवाह वैसा ही है, मुगल-साम्राज्य भी तो वैसा ही है; वह शाहजहाँ भी तो जीवित हैं, लेकिन तख्त-ताऊस पर तो वह नहीं बैठते!

इसी सोच-विचार में वह तब तक बैठी थी, जब तक चन्द्रमा की किरणे उसके मुख पर नहीं पड़ीं।

शाहजादी जहाँनारा तपस्विनी हो गयी है। उसके हृदय में वह स्वाभाविक तेज अब नहीं है, किन्तु एक स्वर्गीय तेज से वह कान्तिमयी थी। उसकी उदारता पहले से भी बढ़ गयी। दीन और दुखी के साथ उसकी ऐसी सहानुभूति थी कि लोग उसे 'मूर्तिमती करुणा' मानते थे। उसकी इस चाल से पाषाण-हृदय औरंगजेब भी विचलित हुआ। उसकी स्वतंत्रता

जो छीन ली गयी थी, उसे फिर मिली। पर अब स्वतंत्रता का उपभोग करने के लिये उसे अवकाश ही कहाँ था ? पिता की सेवा और दुखियों के प्रति सहानुभूति करने से उसे समय ही नहीं था। जिसकी सेवा के लिये सैकड़ों दासियाँ हाथ बाँधकर खड़ी रहती थीं, वह स्वयं दासी की तरह अपने पिता की सेवा करती हुई अपना जीवन व्यतीत करने लगी। वृद्ध शाहजहाँ के इंगित करने पर उसे उठाकर बैठाती और सहारा देकर कभी-कभी यमुना के तट तक उसे ले जाती और उसका मनोरंजन करती हुई छाया-सी बनी रहती।

वृद्ध शाहजहाँ ने इहलोक की लीला पूरी की। अब जहाँनारा को संसार मे कोई काम नहीं है। केवल इधर-उधर उसी महल में घूमना भी अच्छा नहीं मालूम होता। उसकी पूर्व स्मृति और भी उसे सताने लगी। धीरे-धीरे वह बहुत क्षीण हो गयी। बीमार पड़ी। पर, दवा कभी न पी। धीरे-धीरे उसकी बीमारी बहुत बढ़ी और उसकी दशा बहुत खराब हो गयी औरंगजेब ने सुना। अब उससे भी सह्य न हो सका। वह जहाँनारा को देखने के लिये गया।

एक पुराने पलँग पर, जीर्ण बिछौने पर, जहाँनारा पड़ी थी और केवल एक धीमी साँस चल रही थी। औरंगजेब ने देखा कि वह वही जहाँनारा है, जिसके लिये भारतवर्ष की कोई वस्तु अलभ्य नहीं थी, जिसके बीमार पड़ने पर शाहजहाँ भी व्यग्र हो जाता था और सैकड़ों हकीम उसे आरोग्य करने के लिये प्रस्तुत रहते थे। वह इस तरह एक कोने में पड़ी है !

पाषाण भी पिघला, औरंगजेब की आँखे आँसू से भर आयीं और वह घुटने के बल बैठ गया। समीप मुँह ले जाकर बोला—बहिन, कुछ हमारे लिये हुक्म है ?

जहाँनारा ने अपनी आँखे खोल दीं और एक पुरजा उसके हाथ में दिया, जिसे झुककर औरंगजेब ने ले लिया। फिर पूछा—बहिन, क्या तुम हमें माफ़ करोगी ?

जहाँनारा ने खुली हुई आँखों को आकाश की ओर उठा दिया। उस समय उसमें से एक स्वर्गीय ज्योति निकल रही थी और वह वैसे ही देखती रह गयी। औरंगजेब उठा और उसने आँसू पोंछते हुए पुरजे को पढ़ा। उसमें लिखा था—

बगैर सब्ज: न पोशद कसे मजार मरा।
कि कब्रपोश गरीबाँ हमीं गयाह बसस्त॥

मदन-मृणालिनी

विजया-दशमी का त्योहार समीप है, बालक लोग नित्य रामलीला होने से आनन्द में मग्न है।

हाथ में धनुष और तीर लिये हुए एक छोटा-सा बालक रामचन्द्र बनने की तैयारी में लगा हुआ है। चौदह वर्ष का बालक बहुत ही सरल और सुन्दर है।

खेलते-खेलते बालक को भोजन की याद आई फिर कहाँ का राम बनना और कहाँ की रामलीला। चट धनुष फेंककर दौड़ता हुआ माता के पास जा पहुँचा और उस ममता-मोहमयी माता के गले से लिपटकर--माँ! खाने को दे, माँ! खाने को दे--कहता हुआ जननी के चित्त को आनन्दित करने लगा।

जननी बालक का मचलना देखकर प्रसन्न हो रही थी और थोड़ी देर तक बैठी रहकर और भी मचलना देखा चाहती थी। उसके यहाँ एक पड़ोसिन बैठी थी, अतएव वह एकाएक उठकर बालक को भोजन देने में असमर्थ थी। सहज ही असन्तुष्ट हो जानेवाली पड़ोस की स्त्रियों का सहज क्रोधमय स्वभाव किसी से छिपा न होगा। यदि वह तत्काल उठकर चली जाती, तो पड़ोसिन क्रुद्ध होती। अतः वह उठकर बालक को भोजन देने में आनाकानी करने लगी। बालक का मचलना और भी बढ़ चला। धीरे-धीरे वह क्रोधित हो गया, दौड़कर अपनी कमान उठा लाया; तीर चढ़ाकर पड़ोसिन को लक्ष्य किया और कहा--तू यहाँ से जा, नहीं तो मैं मारता हूँ।

दोनों स्त्रियाँ केवल हँसकर उसको मना करती रहीं। अकस्मात् वह तीर बालक के हाथ से छूट पड़ा और पड़ोसिन की गर्दन में कुछ धँस गया! अब क्या था, वह अर्जुन और अश्वत्थामा का पाशुपतास्त्र हो गया। बालक की माँ बहुत घबरा गयी, उसने अपने हाथ से तीर निकाला, उसके

रक्त को धोया, बहुत कुछ ढाढ़स दिया। किन्तु घायल स्त्री का चिल्लाना-कराहना सहज में थमनेवाला नहीं था।

बालक की माँ विधवा थी, कोई उसका रक्षक न था। जब उसका पति जीता था, तब तक उसका संसार अच्छी तरह चलता था; अब जो कुछ पूँजी बच रही थी, उसी में वह अपना समय बिताती थी। ज्यों-त्यों करके उसने अपने चिर-संरक्षित धन में से पचीस रुपये उस घायल स्त्री को दिये।

वह स्त्री किसी से यह बात न कहने का वादा करके अपने घर गयी। परन्तु बालक का पता नहीं, वह डर के मारे घर से निकल किसी ओर भाग गया।

माता ने समझा कि पुत्र कहीं डर से छिपा होगा, शाम तक आ ही जायगा। धीरे-धीरे सन्ध्या-पर-सन्ध्या, सप्ताह-पर-सप्ताह, मास-पर मास बीतने लगे; परन्तु बालक का कहीं पता नहीं। शोक से माता का हृदय जर्जर हो गया, वह चारपाई पर लग गयी। चारपाई ने भी उसका ऐसा अनुराग देखकर उसे अपना लिया, और फिर वह उस पर से न उठ सकी। बालक को अब कौन पूछनेवाला है!

*　　　　*　　　　*

कलकत्ता-महानगरी के विशाल भवनों तथा राजमार्गों को आश्चर्य से देखता हुआ एक बालक एक सुसज्जित भवन के सामने खड़ा है। महीनों कष्ट झेलता, राह चलता, थकता हुआ बालक यहाँ पहुँचा है।

बालक थोड़ी देर तक यही सोचता था कि अब मैं क्या करूँ, किससे अपने कष्ट की कथा कहूँ। इतने में वहाँ धोती-कमीज पहने हुए एक सभ्य बंगाली महाशय का आगमन हुआ।

उस बालक की चौड़ी हड्डी, सुडौल बदन और सुन्दर चेहरा देखकर बंगाली महाशय रुक गये और उसे एक विदेशी समझकर पूछने लगे—

तुम्हारा मकान कहाँ है।

ब....में।

तुम यहाँ कैसे आये ?

भागकर ।

नौकरी करोगे ?

हाँ ।

अच्छा, हमारे साथ चलो।

बालक ने सोचा कि सिवा इस काम के और क्या करना है, तो फिर इनके साथ ही उचित है। कहा—अच्छा, चलिये।

बंगाली महाशय उस बालक को घुमाते-फिराते एक मकान के द्वार पर पहुँचे। दरवान ने उठकर सलाम किया। वह बालक-सहित एक कमरे में पहुँचे, जहाँ एक नवयुवक बैठा हुआ कुछ लिख रहा था, सामने बहुत-से कागज इधर-उधर बिखरे पड़े थे।

युवक ने बालक को देखकर पूछा—बाबूजी, यह बालक कौन है ?

यह नौकरी करेगा, तुमको एक आदमी की जरूरत थी ही, सो इसको हम लिवा लाये है, अपने साथ रक्खो—बाबूजी यह कहकर घर के दूसरे भाग में चले गये।

युवक के कहने पर बालक भी अकचकाता हुआ बैठ गया। उनमें इस तरह बातें होने लगी—

युवक—क्यों जी, तुम्हारा नाम क्या है ?

बालक—(कुछ सोचकर) मदन।

युवक—नाम तो बड़ा अच्छा है। अच्छा, कहो, तुम क्या खाओगे ? रसोई बनाना जानते हो ?

बालक—रसोई बनाना तो नहीं जानते। हाँ, कच्ची-पक्की जैसी हो, बनाकर खा लेते है, किन्तु. . .

अच्छा, संकोच करने की कोई जरूरत नही है—इतना कहकर युवक ने पुकारा—कोई है ?

एक नौकर दौड़कर आया—हुजूर, क्या हुक्म है ?

युवक ने कहा—इनके भोजन करने के लिए ले आओ।

भोजन के उपरान्त बालक युवक के पास आया। युवक ने एक घर दिखाकर कहा कि उस सामने की कोठरी मे सोओ और उसे अपने रहने का स्थान समझो।

युवक की आज्ञा के अनुसार बालक उस कोठरी मे गया, देखा तो एक साधारण-सी चौकी पड़ी है; एक घड़े में जल, लोटा और गिलास भी रक्खा हुआ है। वह चुपचाप चौकी पर लेट गया।

लेटने पर उसे बहुत-सी बातें याद आने लगीं, एक-एक करके उसे भावना के जाल में फँसाने लगीं। बाल्यावस्था के साथी, उनके साथ खेल-कूद, राम-रावण की लड़ाई, फिर उस विजया-दशमी के दिन की घटना, पड़ोसिन के अंग में तीर का धँस जाना, माता की व्याकुलता, और मार्ग के कष्ट को सोचते-सोचते उस भयातुर बालक की विचित्र दशा हो गयी!

मनुष्य की मिमियाई निकालने वाली द्वीप-निवासिनी जातियों की भयानक कहानियाँ, जिन्हें उसने बचपन में माता की गोद में पड़े-पड़े सुना था, उसे और भी डराने लगीं। अकस्मात् उसके मस्तिष्क को उद्वेग से भर देने वाली यह बात भी समा गयी कि——ये लोग तो मुझे नौकर बनाने के लिए अपने यहाँ लाये थे, फिर इतने आराम से क्यों रक्खा है? हो-न-हो वही टापूवाली बात है। बस फिर कहाँ की नींद और कहाँ का सुख, करवटें बदलने लगा! मन में यही सोचता था कि यहाँ से किसी तरह भाग चलो।

परन्तु निद्रा भी कैसी प्यारी वस्तु है! घोर दुःख के समय भी मनुष्य को यही सुख देती है। सब बातों से व्याकुल होने पर भी वह कुछ देर के लिय सो गया।

* * *

मदन उसी घर मे रहने लगा। अब उसे उतनी घबराहट नहीं मालूम होती। अब वह निर्भय-सा हो गया है। किन्तु अभी तक वह बात कभी-कभी उसे उधेड़-बुन मे लगा देती है कि ये लोग मुझसे इतना अच्छा बर्ताव क्यों करते हैं और क्यों इतना सुख देते है। पर इन सब बातों को

वह उस समय भूल जाता है, जब 'मृणालिनी' उसकी रसोई बनवाने लगती है—देखो, रोटी जलती है, उसे उलट दो, दाल भी चला दो—इत्यादि बाते जब मृणालिनी के कोमल कण्ठ से वीणा की झंकार के समान सुनाई देती है, तब वह अपना दुःख —माता का सोच—सब भूल जाता है।

मदन है तो अबोध, किन्तु संयुक्त प्रान्तवासी होने के कारण स्पृश्या-स्पृश्य का उसे बहुत ही ध्यान रहता है। वह दूसरे का बनाया भोजन नहीं करता। अतएव मृणालिनी आकर उसे बताती है और भोजन के समय हवा भी करती है।

मृणालिनी गृहस्वामी की कन्या है। वह देवबाला-सी जान पड़ती है। बड़ी-बड़ी आँखे, उज्ज्वल कपोल, मनोहर अंगभंगी गुल्फविलम्बित केश-कलाप उसे और भी सुन्दरी बनने मे सहायता दे रहे हैं। अवस्था तेरह वर्ष की है; किन्तु वह बहुत गम्भीर है।

नित्य साथ होने से दोनों मे अपूर्व भाव का उदय हुआ है। बालक का मुख जब आग की आँच से लाल तथा आँखे धुएँ के कारण आँसुओं से भर जाती हैं, तब बालिका आँखों मे आँसू भर कर, रोष-पूर्वक पंखी फेककर कहती है—लो जी, इससे काम लो, क्यों व्यर्थ परिश्रम करते हो? इतने दिन तुम्हें रसोई बनाते हुए, मगर बनाना न आया!

तब मदन आँच लगने के सारे दुःख को भूल जाता है—तब उसकी तृष्णा और बढ़ जाती है; भोजन रहने पर भी भूख सताती है। और, सताया जाकर भी वह हँसने लगता है। मन-ही-मन सोचता, मृणालिनी! तुम बंग-महिला क्यों हुई?

मदन के मन मे यह बात क्यों उत्पन्न हुई? दोनों सुन्दर थे, दोनों ही किशोर थे, दोनों संसार से अनभिज्ञ थे, दोनों के हृदय मे रक्त था—उच्छ्वास था—आवेग था—विकास था, दोनों के हृदय-सिन्धु में किसी अपूर्व चन्द्र का मधुर-उज्ज्वल प्रकाश पड़ता था, दोनों के हृदय-कानन मे नन्दन-परिजात खिला था!

* * *

जिस परिवार मे बालक मदन पलता था, उसके मालिक हैं अमरनाथ बनर्जी। आपके नवयुवक पुत्र का नाम है किशोरनाथ बनर्जी, कन्या का नाम मृणालिनी और गृहिणी का नाम हीरामणि है। बम्बई और कलकत्ता, दोनों स्थानों में, आपकी दूकानें थीं, जिनमें बाहरी चीजों का क्रय-विक्रय होता था; विशेष काम मोती के बनिज का था। आपका आफिस सीलोन में था; वहाँ से मोती की खरीद होती थी। आपकी कुछ जमीन भी वहाँ थी। उससे आपकी बड़ी आय थी। आप प्रायः अपनी बम्बई की दूकान में और आपका परिवार कलकत्ते मे रहता था। धन अपार था, किसी चीज की कमी न थी। तो भी आप एक प्रकार से चिन्तित थे!

संसार मे कौन चिन्ताग्रस्त नहीं है? पशु-पक्षी, कीट-पतंग, चेतन और अचेतन, सभी को किसी प्रकार की चिन्ता है। जो योगी हैं, जिन्होंने सब कुछ त्याग दिया है, संसार जिनके वास्ते असार है, उन्होंने भी इसको स्वीकार किया है। यदि वे आत्मचिन्तन न करे, तो उन्हें योगी कौन कहेगा?

किन्तु बनर्जी महाशय की चिन्ता का कारण क्या है? सो पति-पत्नी की इस बातचीत से ही विदित हो जायगा--

अमरनाथ--किशोर तो क्वाँरा ही रहा चाहता है। अभी तक उसकी शादी कहीं पक्की नहीं हुई।

हीरामणि--सीलोन मे आपके व्यापार करने तथा रहने से समाज आपको दूसरी ही दृष्टि से देख रहा है।

अमरनाथ--ऐसे समाज की मुझे कुछ परवाह नहीं है। मै तो केवल लड़की और लड़के का ब्याह अपनी जाति में करना चाहता था। क्या टापुओं में जाकर लोग पहले बनिज नही करते थे? मैने कोई अन्य धर्म तो ग्रहण नहीं किया, फिर यह व्यर्थ का आडम्बर क्यों है? और, यदि कोई खान-पान का दोष दे, तो क्या यहाँ पर तिलक कर पूजा करने वाले लोगों से होटल बचा हुआ है?

हीरामणि--फिर क्या कीजियेगा ? समाज तो इस समय केवल उन्हीं बगला-भगतों को परम धार्मिक समझता है !

अमरनाथ--तो फिर अब मै ऐसे समाज को दूर ही से हाथ जोड़ता हूँ।

हीरामणि--तो क्या ये लड़की-लड़के क्वाँरे ही रहेंगे ?

अमरनाथ--नहीं, अब हमारी यह इच्छा है कि तुम सबको लेकर उसी जगह चलें। यहाँ कई वर्ष रहते भी हुआ किन्तु कार्य सिद्ध होने की कुछ भी आशा नहीं है; तो फिर अपना व्यापार क्यों नष्ट होने दे ? इसलिये, अब तुम सबको वहीं चलना होगा। न होगा तो ब्राह्म हो जायेंगे, किन्तु यह उपेक्षा अब सही नहीं जाती।

* * *

मदन, मृणालिनी के संगम से, बहुत ही प्रसन्न है। सरला मृणालिनी भी प्रफुल्लित है। किशोरनाथ भी उसे बहुत ही प्यार करता है, प्रायः उसी को साथ लेकर हवा खाने के लिये जाता है। दोनों में बहुत ही सौहार्द है। मदन भी बाहर किशोरनाथ के साथ, और घर आने पर मृणालिनी की प्रेममयी वाणी से आप्यायित रहता है।

मदन का समय सुख से बीतने लगा ! किन्तु बनर्जी महाशय के सपरिवार बाहर जाने की बातों ने एक बार उसके हृदय को उद्वेगपूर्ण बना दिया। वह सोचने लगा कि मेरा क्या परिणाम होगा, क्या मुझे भी चलने के लिए आज्ञा देंगे ? और, यदि ये चलने के लिए कहेंगे, तो मै क्या करूँगा ? इनके साथ जाना ठीक होगा या नहीं ?

इन सब बातों को वह सोचता ही था कि इतने मे किशोरनाथ ने अकस्मात् आकर उसे चौका दिया। उसने खड़े होकर पूछा--कहिये, आप लोग किस सोच-विचार मे पड़े हुए है ? कहाँ जाने का विचार है ?

क्यो, क्या तुम न चलोगे ?

कहाँ ?

जहाँ हम लोग जायँ।

वही तो पूछता हूँ कि आप लोग कहाँ जायँगे ?

सीलोन।

तो मुझसे भी आप वहाँ चलने के लिये कहते है ?

इसमे तुम्हारी हानि ही क्या है ?

(यज्ञोपवीत दिखाकर) इसकी ओर भी तो ध्यान कीजिये !

तो क्या समुद्र-यात्रा तुम नहीं कर सकते ?

सुना है कि वहाँ जाने से धर्म नष्ट हो जाता है !

क्यों ? जिस तरह तुम यहाँ भोजन बनाते हो, उसी तरह वहाँ भी बनाना।

जहाज पर भी तो चढ़ना होगा !

उसमें हर्ज ही क्या है ? लोग गंगासागर और जगन्नाथजी जाते समय जहाज पर नहीं चढ़ते ?

मदन अब निरुत्तर हुआ; किन्तु उत्तर सोचने लगा। इतने ही में उधर से मृणालिनी आती हुई दिखाई पड़ी। मृणालिनी को देखते ही उसके विचार-रूपी मोतियों को प्रेम-हंस ने चुग लिया, और उसे उसकी बुद्धि और भी भ्रमपूर्ण जान पड़ने लगी।

मृणालिनी ने पूछा—क्यों मदन, तुम बाबा के साथ न चलोगे ?

जिस तरह वीणा की झंकार से मस्त होकर मृग स्थिर हो जाता है, अथवा मनोहर वंशी की तान से झूमने लगता है, वैसे ही मृणालिनी के मधुर स्वर मे मुग्ध मदन ने कह दिया—क्यों न चलूँगा।

* * *

सारा संसार घड़ी-घड़ी-भर पर, पल-पल-भर पर, नवीन-सा प्रतीत होता है, और इससे उस विश्वयंत्र को बनाने वाले स्वतंत्र की बड़ी भारी निपुणता का पता लगता है; क्योंकि नवीनता की यदि रचना न होती, तो मानव-समाज को यह संसार और ही तरह का भासित होता। फिर उसे किसी वस्तु की चाह न होती, इतनी तरह के व्यावहारिक पदार्थों

की कुछ भी आवश्यकता न होती। समाज, राज्य और धर्म के विशेष परिवर्त्तन-रूपी पट मे इसकी मनोहर मूर्त्ति और भी सलोनी देख पड़ती है। मनुष्य बहुप्रेमी क्यों हो जाता है ? मानवों की प्रवृत्ति क्यों दिन-रात बदला करती है ? नगर-निवासियों को पहाड़ी घाटियाँ क्यो सौन्दर्यमयी प्रतीत होती है ? विदेश-पर्यटन मे क्यों मनोरंजन होता है ? मनुष्य क्यों उत्साहित होता है ? इत्यादि प्रश्नों के उत्तर मे केवल यही कहा जा सकता है कि नवीनता की प्रेरणा !

नवीनता वास्तव में ऐसी ही वस्तु है कि जिससे मदन को भारत से सीलोन तक पहुँच जाना कुछ कष्टकर न हुआ !

विशाल सागर के वक्षस्थल पर दानव-राज की तरह वह जहाज अपनी चाल और उसकी शक्ति दिखा रहा है। उसे देखकर मदन को द्रौपदी और पाण्डवों को लादे हुए घटोत्कच का ध्यान आता था !

उत्ताल तरंगों की कल्लोल-माला अपना अनुपम दृश्य दिखा रही है। चारों ओर जल-ही-जल है, चन्द्रमा अपने पिता की गोद में क्रीड़ा करता हुआ आनन्द दे रहा है। अनन्त सागर में अनन्त आकाश-मण्डल के असंख्य नक्षत्र अपने प्रतिबिम्ब दिखा रहे है।

मदन तीन-चार बरस में युवक हो गया है। उसकी भावुकता बढ़ गयी थी। वह समुद्र का सुन्दर दृश्य देख रहा था। अकस्मात् एक प्रकाश दिखाई देने लगा। वह उसी को देखने लगा।

उस मनोहर अरुण का प्रकाश नील जल को भी आरक्तिम बनाने की चेष्टा करने लगा। चंचल तरंगों की लहरियाँ सूर्य की किरणों से क्रीड़ा करने लगीं। मदन उस अनन्त समुद्र को देखकर डरा नहीं, किन्तु अपने प्रेममय हृदय का एक जोड़ा देखकर और भी प्रसन्न हुआ। वह निर्भीक हृदय से उन लोगों के साथ सीलोन पहुँचा।

*　　　　*　　　　*

अमरनाथ के विशाल भवन मे रहने से मदन को बड़ी ही प्रसन्नता

है। मृणालिनी और मदन उसी प्रकार से मिलते-जुलते है, जैसे कलकत्ते में मिलते-जुलते थे। लवण-महासमुद्र की महिमा दोनों ही को मनोहर जान पड़ती है। प्रशान्त महासागर के तट की सन्ध्या दोनों के नेत्रों को ध्यान में लगा देती है। डूबते हुए सूर्यदेव देव-तुल्य हृदयों को संसार की गति दिखलाते है, अपने राग की आभा उन प्रभातमय हृदयों पर डालते है, दोनों ही सागर-तट पर खड़े सिन्धु की तरंग-भंगियों को देखते है; फिर भी दोनो ही दोनों की मनोहर अंग-भंगियों मे भूले हुए है।

महासमुद्र के तट पर बहुत समय तक खड़े होकर मृणालिनी और मदन उस अनन्त का सौन्दर्य देखते थे। अकस्मात् बैंड का सुरीला राग सुनाई दिया, जो कि सिन्धु-गर्जन को भी भेद कर निकलता था।

मदन, मृणालिनी—दोनों एकाग्रचित्त हो उस ओजस्विनी कविवाणी को जातीय संगीत में सुनने लगे। किन्तु वहाँ कुछ दिखाई न दिया। चकित होकर वे सुन रहे थे। प्रबल वायु भी उत्ताल तरंगों को हिलाकर उनको डराता हुआ उसी की प्रतिध्वनि करता था। मंत्र-मुग्ध के समान सिन्धु भी अपनी तरंगों के घात-प्रतिघात पर चिढ़कर उन्हीं शब्दों को दुहराता है। समुद्र को स्वीकार करते देख कर अनन्त आकाश भी उसी की प्रतिध्वनि करता है।

धीरे-धीरे विशाल सागर के हृदय को फाड़ता हुआ एक जंगी जहाज दिखाई पड़ा। मदन और मृणालिनी, दोनों ही, स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखते रहे। जहाज अपनी जगह पर ठहरा और इधर पोर्ट-संरक्षक ने उस पर से सैनिकों के उतरने के लिये यथोचित प्रबन्ध किया।

समुद्र की गम्भीरता, सन्ध्या की निस्तब्धता और बैंड के सुरीले राग ने दोनों के हृदयों को सम्मोहित कर लिया और वे इन्हीं सब बातों की चर्चा करने लग गये।

मदन ने कहा—मृणालिनी, यह बाजा कैसा सुरीला है!

मृणालिनी का ध्यान टूटा। सहसा उसके मुख से निकला—तुम्हारे कल-कण्ठ से अधिक नहीं है।

इसी तरह दिन बीतने लगा। मदन को कुछ काम नहीं करना पड़ता था। जब कभी उसका जी चाहता, तब वह महासागर के तट पर जाकर प्रकृति की सुषमा को निरखता और उसी में आनन्दित होता था। वह प्रायः गोता लगाकर मोती निकालने वालों की ओर देखा करता और मन-ही-मन उनकी प्रशंसा किया करता था।

मदन का मालिक भी उसको कभी कोई काम करने के लिये आज्ञा नहीं देता था। वह उसे बैठा देखकर मृणालिनी के साथ घूमने के लिए जाने की आज्ञा देता था। उसका स्वभाव ही ऐसा सरल था कि सभी सहवासी उससे प्रसन्न रहते थे, वह भी उनसे खूब हिल-मिलकर रहता था।

* * *

संसार भी बड़ा प्रपंचमय यंत्र है। वह अपनी मनोहरता पर आप ही मुग्ध रहता है।

एक एकान्त कमरे में बैठे हुए मृणालिनी और मदन ताश खेल रहे है; दोनों जी-जान से अपने-अपने जीतने की कोशिश कर रहे है।

इतने ही में सहसा अमरनाथ बाबू उस कोठरी में आये। उनके मुख-मण्डल पर क्रोध झलकता था। वह आते ही बोले—क्यों रे दुष्ट! तू बालिका को फुसला रहा है?

मदन तो सुनकर सन्नाटे में आ गया! उसने नम्रता के साथ खड़े होकर पूछा—क्यों पिता, मैंने क्या किया है?

अमरनाथ—अभी पूछता ही है! तू इस लड़की को बहका कर अपने साथ लेकर दूसरी जगह भागना चाहता है?

मदन—बाबूजी, यह आप क्या कह रहे है? मुझ पर आप इतना अविश्वास कर रहे हैं? किसी दुष्ट ने आपसे झूठी बात कही है।

अमरनाथ—अच्छा, तुम यहाँ से चलो और अब से तुम दूसरी कोठरी में रहा करो। मृणालिनी को और तुमको अगर हम एक जगह अब देख

पावेंगे, तो समझ रक्खो—समुद्र के गर्भ में ही तुमको स्थान मिलेगा।

मदन, अमरनाथ बाबू के पीछे चला। मृणालिनी मुरझा गयी, मदन के ऊपर अपवाद लगाना उसके सुकुमार हृदय से सहा नहीं गया। वह नव-कुसुमित पददलित आश्रय-विहीन माधवी-लता के समान पृथ्वी पर गिर पड़ी और लोट-लोटकर रोने लगी।

मृणालिनी ने दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया और वहीं लोटती हुई आँसुओं से हृदय की जलन को बुझाने लगी।

कई घंटे के बाद जब उसकी माँ ने जाकर किवाड़ खुलवाये, उस समय उसकी रेशमी साड़ी का आँचल भींगा हुआ, उसका मुख सूखा हुआ और आँखें लाल-लाल हो आयी थीं। वास्तव मे वह मदन के लिये रोई थी। इसी से उसकी यह दशा हो गयी। सचमुच संसार बड़ा प्रपंचमय है।

* * *

दूसरे घर में रहने से मदन बहुत घबड़ाने लगा। वह अपना मन बहलाने के लिए कभी-कभी समुद्र-तट पर बैठकर गद्‌गद हो सूर्य-भगवान का पश्चिम दिशा से मिलना देखा करता था, और जब तक वह अस्त न हो जाते थे, तब तक बराबर टकटकी लगाये देखता था। वह अपने चित्त में अनेक कल्पना की लहरें उठाकर समुद्र और अपने हृदय से तुलना भी किया करता था।

मदन का अब इस संसार में कोई नहीं है। माता भारत में जीती है या मर गयी—यह भी बेचारे को नहीं मालूम! संसार की मनोहरता, आशा की भूमि, मदन के जीवन-स्रोत का जल मदन के हृदय-कानन पूर्वक आपारिजात, मदन के हृदय-सरोवर की मनोहर मृणालिनी भी अब उससे अलग कर दी गई है। जननी, जन्मभूमि, प्रिय, कोई भी तो मदन के पास नहीं है? इसी से उसका हृदय आलोड़ित होने लगा, और वह अनाथ बालक ईर्ष्या से भरकर अपने अपमान की ओर ध्यान देने लगा। उसको

भली भाँति विश्वास हो गया कि इस परिवार के साथ रहना ठीक नहीं है। जब इन्होंने मेरा तिरस्कार किया, तो अब इन्हीं के आश्रित होकर क्यों रहूँ ?

यह सोचकर उसने अपने चित्त मे कुछ निश्चय किया और कपड़े पहनकर समुद्र की ओर घूमने के लिए चल पड़ा। राह में वह अपनी उधेड़-बुन मे चला जाता था कि किसी ने पीठ पर हाथ रक्खा। मदन ने पीछे देखकर कहा—आह, आप है किशोर बाबू ?

किशोरनाथ ने हँसकर कहा—कहाँ बगदादी ऊँट की तरह भागे जाते हो ?

कहीं तो नही, यही समुद्र की ओर जा रहा हूँ।

समुद्र की ओर क्यों ?

शरण माँगने के लिए।

यह बात मदन ने डबडबायी हुई आँखों से किशोर की ओर देखकर कही।

किशोर ने रूमाल से मदन के आँसू पोंछते-पोंछते कहा—मदन, हम जानते है कि उस दिन बाबूजी ने जो तिरस्कार किया था, उससे तुमको बहुत दुःख है। मगर सोचो तो, इसमें दोष किसका है ? यदि तुम उस रोज मृणालिनी को बहकाने का उद्योग न करते, तो बाबूजी तुम पर क्यों अप्रसन्न होते ?

अब तो मदन से नहीं रहा गया। उसने क्रोध से कहा—कौन दुष्ट उस देवबाला पर झूठा अपवाद लगाता है ? और मैंने उसे बहकाया है ? इस बात का कौन साक्षी है ? किशोर बाबू ! आप लोग मालिक है, जो चाहें सो कहिये। आपने पालन किया है, इसलिए, यदि आप आज्ञा दे तो मदन समुद्र में भी कूद पड़ने के लिए तैयार है, मगर अपवाद और अपमान से बचाये रहिये।

कहते-कहते मदन का मुख क्रोध से लाल हो आया, आँखों में आँसू भर आये, उसके आकार से उस समय दृढ़ प्रतिज्ञा झलकती थी।

किशोर ने कहा—इस बारे मे विशेष हम कुछ नहीं जानते, केवल माँ के मुख से सुना था कि जमादार ने बाबूजी से तुम्हारी निन्दा की है और इसी से वह तुम पर बिगड़े है।

मदन ने कहा—आप लोग अपनी बाबूगीरी में भूले रहते है और ये बेईमान आपका सब माल खाते हैं। मैंने उस जमादार को मोती निकालने वालों के हाथ मोती बेचते देखा; मैंने पूछा—क्यों, तुमने मोती कहॉ पाया? तब उसने गिड़गिड़ाकर, पैर पकड़कर, मुझसे कहा—बाबूजी से न कहियेगा। मैने उसे डॉटकर फिर ऐसा काम न करने के लिए कहकर छोड़ दिया, आप लोगों से नहीं कहा। इसी कारण वह ऐसी चाल चलता है और आप लोगों ने भी बिना सोचे-समझे उसकी बात पर विश्वास कर लिया है।

यों कहते-कहते मदन उठ खड़ा हो गया। किशोर ने उसका हाथ पकड़कर बैठाया और आप भी बैठकर कहने लगा—मदन, घबड़ाओ मत, थोड़ी देर बैठकर हमारी बात सुनो। हम उसको दण्ड देगे और तुम्हारा अपवाद भी मिटावेगे। मगर हम एक बात जो कहते है, उसे ध्यान देकर सुनो। मृणालिनी अब बालिका नहीं है, और तुम भी बालक नहीं हो। तुम्हारे-उसके जैसे भाव है, सो भी हमसे छिपे नहीं हैं। फिर ऐसी जगह पर हम तो यही चाहते हैं कि तुम्हारा और मृणालिनी का ब्याह हो जाय।

* * *

मदन ब्याह का नाम सुनकर चौक पड़ा, और मन में सोचने लगा कि यह कैसी बात? कहॉ हम युक्तप्रान्त-निवासी अन्य-जातीय, और कहॉ ये बंगाली ब्राह्मण, फिर ब्याह किस तरह हो सकता है! हो-न-हो ये मुझे भुलावा देते है। क्या मै इनके साथ अपना धर्म नष्ट करूँगा? क्या इसी कारण ये लोग मुझे इतना सुख देते हैं और खूब खुलकर मृणालिनी के साथ घूमने-फिरने और रहने देते थे? मृणालिनी को मै जो

से चाहता हूँ, और जहाँ तक देखता हूँ, मृणालिनी भी मुझसे कपट-प्रेम नहीं करती। किन्तु यह ब्याह नहीं हो सकता; यद्यपि इसमें धर्म और अधर्म दोनों का डर है। धर्म का निर्णय करने की मुझमें शक्ति नहीं है। मैंने ऐसा ब्याह होते न देखा है और न सुना है, फिर कैसे यह ब्याह करूँ ?

इन्हीं बातों को सोचते-सोचते बहुत देर हो गयी। जब मदन को यह सुन पड़ा कि 'अच्छा, सोचकर हमसे कहना', तब वह चौंक पड़ा और देखा तो किशोरनाथ जा रहा है।

मदन ने किशोरनाथ के जाने पर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया और फिर अपने विचारों के सागर मे मग्न हो गया।

फिर मृणालिनी का ध्यान आया, हृदय धड़कने लगा। मदन की चिन्ता-शक्ति का वेग रुक गया और उसके मन में यही समाया कि ऐसे धर्म को मैं दूर ही से हाथ जोड़ता हूँ ! मृणालिनी—प्रेम-प्रतिमा मृणालिनी—को मै नहीं छोड़ सकता।

मदन इसी मन्तव्य को स्थिर कर, समुद्र की ओर मुख कर, उसकी गम्भीरता निहारने लगा।

वहाँ पर कुछ धनी लोग पैसा फेंककर उसे समुद्र से ले आने का तमाशा देख रहे थे। मदन ने सोचा कि प्रेमियों का जीवन 'प्रेम' है और सज्जनों का अमोघ धन 'धर्म' है। ये लोग अपने प्रेम-जीवन की परवाह न कर धर्म-धन को बटोरते है और फिर इनके पास जीवन और धन दोनों चीजे दिखाई पड़ती है। तो क्या मनुष्य इनका अनुकरण नहीं कर सकता ? अवश्य कर सकता है। प्रेम ऐसी तुच्छ वस्तु नहीं है कि धर्म को हटाकर उस स्थान पर आप बैठे। प्रेम महान है, प्रेम उदार है। प्रेमियों को भी वह उदार और महान बनाता है। प्रेम का मुख्य अर्थ है 'आत्मत्याग'। तो क्या मृणालिनी से ब्याह कर लेना ही प्रेम में गिना जायगा ? नहीं-नहीं, वह घोर स्वार्थ है। मृणालिनी को मै जन्म-भर प्रेम से अपने हृदय-मन्दिर में बिठाकर पूजूँगा, उसकी सरल प्रतिमा को पंक में न लपेटूँगा। परन्तु ये लोग जैसा बर्ताव करते है, उससे सम्भव है

कि मेरे विचार पलट जायँ। इसलिए अब इन लोगों से दूर रहना ही उचित है।

मदन इन्हीं बातों को सोचता हुआ लौट आया, और जो अपना मासिक वेतन जमा किया था, वह--तथा कुछ कपड़े आदि आवश्यक सामान--लेकर वहाँ से चला गया। जाते समय उसने एक पत्र लिखकर वहीं छोड़ दिया।

जब बहुत देर तक लोगों ने मदन को नहीं देखा, तब चिन्तित हुए। खोज करने से उनको मदन का पत्र मिला, जिसे किशोरनाथ ने पढ़ा और पढ़कर उसका मर्म पिता को समझा दिया।

पत्र का भाव समझते ही उनकी सब आशा निर्मूल हो गयी। उन्होंने कहा--किशोर, देखो, हमने सोचा था कि मृणालिनी किसी कुलीन हिन्दू को समर्पित हो, परन्तु वह नहीं हुआ। इतना व्यय और परिश्रम, जो मदन के लिए किया गया, सब व्यर्थ हुआ। अब वह कभी मृणालिनी से ब्याह नहीं करेगा, जैसा कि उसके पत्र से विदित होता है।

आपके उस व्यवहार ने उसे और भी भड़का दिया। अब वह कभी ब्याह न करेगा।

मृणालिनी का क्या होगा ?

जो उसके भाग्य में है !

क्या जाते समय मदन ने मृणालिनी से भी भेंट नहीं की ?

पूछने से मालूम होगा।

इतना कहकर किशोर मृणालिनी के पास गया। मदन उससे भी नहीं मिला था। किशोर ने आकर पिता से सब हाल कह दिया।

अमरनाथ बहुत ही शोकग्रस्त हुए। बस उसी दिन से उनकी चिन्ता बढ़ने लगी। क्रमशः वह नित्य ही मद्य-सेवन करने लगे। वह तो प्रायः अपनी चिन्ता दूर करने के लिए मद्य-पान करते थे, किन्तु उसका फल उलटा हुआ--उनकी दशा और भी बुरी हो चली; यहाँ तक कि वह सब समय पान करने लगे, काम-काज देखना-भालना छोड़ दिया।

नवयुवक 'किशोर' बहुत चिन्तित हुआ, किन्तु वह धैर्य के साथ सांसारिक कष्ट सहने लगा।

मदन के चले जाने से मृणालिनी को बड़ा कष्ट हुआ। उसे यह बात और भी खटकती थी कि मदन जाते समय उससे क्यों नहीं मिला। वह यह नहीं समझती थी कि मदन यदि जाते समय उससे मिलता, तो जा नहीं सकता था।

मृणालिनी बहुत विरक्त हो गयी। संसार उसे सूना दिखाई देने लगा। किन्तु वह क्या करे? उसे अपनी मानसिक व्यथा सहनी ही पड़ी।

* * *

मदन ने अपने एक मित्र के यहाँ जाकर डेरा डाला। वह भी मोती का व्यापार करता था। बहुत सोचने-विचारने के उपरान्त उसने भी मोती का ही व्यवसाय करना निश्चित किया।

मदन नित्य सन्ध्या के समय, मोती के बाजार में जा, मछुए लोग जो अपने मेहनताने में मिली हुई मोतियों की सीपियाँ बेचते थे--उनको खरीदने लगा; क्योंकि इसमें थोड़ी पूँजी से अच्छी तरह काम चल सकता था। ईश्वर की कृपा से उसको नित्य विशेष लाभ होने लगा।

संसार में मनुष्य की अवस्था सदा बदलती रहती है। वही मदन, जो तिरस्कार पाकर दासत्व छोड़ने पर लक्ष्य-भ्रष्ट हो गया था, अब एक प्रसिद्ध व्यापारी बन गया।

मदन इस समय सम्पन्न हो गया। उसके यहाँ अच्छे-अच्छे लोग मिलने-जुलने आने लगे। उसने नदी के किनारे एक बहुत सुन्दर बँगला बनवा लिया है; उसके चारों ओर सुन्दर बगीचा भी है। व्यापारी लोग उत्सव के अवसरों पर उसको निमंत्रण देते हैं; वह भी अपने यहाँ कभी-कभी उन लोगों को निमंत्रित करता है। संसार की दृष्टि में वह बहुत सुखी

था, यहाँ तक कि बहुत लोग उससे डाह करने लगे। सचमुच संसार बड़ा आडम्बर-प्रिय है !

मदन सब प्रकार से शारीरिक सुख भोग करता था; पर उसके चित्त-पट पर किसी रमणी की मलिन छाया निरन्तर अंकित रहती थी; जो उसे कभी-कभी बहुत कष्ट पहुँचाती थी। प्राय: वह उसे विस्मृति के जल से धो डालना चाहता था। यद्यपि वह चित्र किसी साधारण कारीगर का अंकित किया हुआ नहीं था कि एकदम लुप्त हो जाय, तथापि वह बराबर उसे मिटा डालने की ही चेष्टा करता था।

अकस्मात् एक दिन, जब सूर्य की किरणें सुवर्ण-सी सु-वर्ण-आभा धारण किए हुई थीं, नदी का जल मौज में बह रहा था, उस समय मदन किनारे खड़ा हुआ स्थिर भाव से नदी की शोभा निहार रहा था। उसको वहाँ कई-एक सुसज्जित जल-यान देख पड़े। उसका चित्त, न जाने क्यों, उत्कण्ठित हुआ। अनुसन्धान करने पर पता लगा कि वहाँ वार्षिक जल-विहार का उत्सव होता है, उसी में लोग जा रहे है।

मदन के चित्त मे भी उत्सव देखने की आकांक्षा हुई। वह भी अपनी नाव पर चढ़कर उसी ओर चला। कल्लोलिनी की कल्लोलों में हिलती हुई वह छोटी-सी सुसज्जित तरी चल दी।

मदन उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ नावों का जमाव था। सैकड़ों बजरे और नौकाएँ अपने नीले-पीले, हरे-लाल निशान उड़ाती हुई इधर-उधर घूम रही है। उन पर बैठे हुए मित्र लोग आपस में आमोद-प्रमोद कर रहे है। कामिनियाँ अपने मणिमय अलंकारों की प्रभा से उस उत्सव को आलोकमय किये हुई हैं।

मदन भी अपनी नाव पर बैठा हुआ एकटक इस उत्सव को देख रहा है। उसकी आँखे जैसे किसी को खोज रही हैं। धीरे-धीरे सन्ध्या हो गयी। क्रमश: एक, दो, तीन तारे दिखाई दिये। साथ ही, पूर्व की तरफ,

ऊपर को उठते हुए गुब्बारे की तरह चन्द्रबिम्ब दिखाई पड़ा। लोगों के नेत्रों में आनन्द का उल्लास छा गया। इधर दीपक जल गये। मधुर संगीत, शून्य की निस्तब्धता में, और भी गूँजने लगा। रात के साथ ही आमोद-प्रमोद की मात्रा बढ़ी।

परन्तु मदन के हृदय में सन्नाटा छाया हुआ है। उत्सव के बाहर वह अपनी नौका को धीरे-धीरे चला रहा है। अकस्मात् कोलाहल सुनाई पड़ा, वह चौककर उधर देखने लगा। उसी समय कोई चार-पाँच हाथ दूर एक काली-सी चीज दिखाई दी। अस्त हो रहे चन्द्रमा का प्रकाश पड़ने से कुछ वस्त्र भी दिखाई देने लगा। वह बिना कुछ सोचे-समझे ही जल में कूद पड़ा और उसी वस्तु के साथ बह चला।

ऊषा की आभा पूर्व में दिखाई पड़ रही है। चन्द्रमा की मलिन ज्योति तारागण को भी मलिन कर रही है।

तरंगो से शीतल दक्षिण-पवन धीरे-धीरे संसार को निद्रा से जगा रहा है। पक्षी भी कभी-कभी बोल उठते है।

निर्जन नदी-तट में एक नाव बँधी है, और बाहर एक सुकुमारी सुन्दरी का शरीर अचेत अवस्था में पड़ा हुआ है। एक युवक सामने बैठा हुआ उसे होश में लाने का उद्योग कर रहा है। दक्षिण-पवन भी उसे इस शुभ काम में बहुत सहायता दे रहा है।

सूर्य की पहली किरण का स्पर्श पाते ही सुन्दरी के नेत्र-कमल धीरे-धीरे विकसित होने लगे। युवक ने ईश्वर को धन्यवाद दिया और झुककर उस कामिनी से पूछा—मृणालिनी ! अब कैसी हो ?

मृणालिनी ने नेत्र खोलकर देखा। उसके मुख-मण्डल पर हर्ष के चिह्न दिखाई पड़े। उसने कहा—प्यारे मदन, अब अच्छी हूँ।

प्रणय का भी वेग कैसा प्रबल है ! यह किसी महासागर की प्रचण्ड आँधी से कम प्रबलता नही रखता। इसके झोंके में मनुष्य की जीवन-नौका असीम तरंगों से घिरकर प्रायः कूल को नहीं पाती, अलौकिक आलोकमय अन्धकार में प्रणयी अपनी प्रणय-तरी पर आरोहण कर उसी आनन्द

के महासागर में घूमना पसन्द करता है, कूल की ओर जाने की इच्छा भी नहीं करता ।

इस समय मदन और मृणालिनी दोनों की आँखों से आँसुओं की धारा धीरे-धीरे बह रही है। चंचलता का नाम भी नहीं है। कुछ बल आने पर दोनो उस नाव में जा बैठे ।

मदन ने मल्लाहों को पास के गाँव से दूध या और कुछ भोजन की वस्तु लाने के लिए भेजा। फिर दोनो ने बिछुड़ने के उपरान्त की सब कथा परस्पर कह सुनाई ।

मृणालिनी कहने लगी—भैया किशोरनाथ से मै तुम्हारा सब हाल सुना करती थी। पर वह कहा करते थे कि तुमसे मिलने में उनको संकोच होता है। इसका कारण उन्होंने कुछ नहीं बतलाया। मै भी हृदय पर पत्थर रखकर तुम्हारे प्रणय को आज तक स्मरण कर रही हूँ ।

मदन ने बात टालकर पूछा—मृणालिनी, तुम जल में कैसे गिरी ?

मृणालिनी ने कहा—मुझे बहुत उदास देख भैया ने कहा, चलो तुम्हें एक तमाशा दिखलावे, सो मै भी आज यहाँ मेला देखने आयी। कुछ कोलाहल सुनकर मै नाव पर खड़ी हो देखने लगी। दो नाववालों मे झगड़ा हो रहा था। उन्हीं के झगड़े मे हाथापाई में नाव हिल गयी और मै गिर पड़ी। फिर क्या हुआ, सो मै कुछ नहीं जानती ।

इतने में दूर से एक नाव आती हुई दिखाई पड़ी, उस पर किशोरनाथ था। उसने मृणालिनी को देखकर बहुत हर्ष प्रकट किया, और सब लोग मिलकर बहुत आनन्दित हुए ।

बहुत कुछ बातचीत होने के उपरान्त मृणालिनी और किशोर दोनों ने मदन के घर चलना स्वीकार किया। नावे नदी-तट पर स्थित मदन के घर की ओर बढ़ीं। उस समय मदन को एक दूसरी ही चिन्ता थी।

भोजन के उपरान्त किशोरनाथ ने कहा—मदन, हम अब भी तुमको छोटा भाई ही समझते हैं; पर तुम शायद हमसे कुछ रुष्ट हो गये हो।

मदन ने कहा—भैया, कुछ नहीं। इस दास से जो कुछ ढिठाई हुई हो, उसे क्षमा करना, मै तो आपका वही मदन हूँ।

इसी तरह की बहुत-सी बाते होती रहीं, और फिर दूसरे दिन किशोर-नाथ मृणालिनी को साथ लेकर अपने घर गया।

* * *

अमरनाथ बाबू की अवस्था बड़ी शोचनीय है। वह एक प्रकार से मद्य के नशे में चूर रहते है, काम-काज देखना सब छोड़ दिया है। अकेला किशोरनाथ काम-काज सँभालने के लिए तत्पर हुआ, पर उसके व्यापार की दशा अत्यन्त शोचनीय होती गयी, और उसके पिता का स्वास्थ्य भी बिगड़ चला। क्रमशः उसको चारों ओर अन्धकार दिखाई देने लगा।

संसार की कैसी विलक्षण गति है! जो बाबू अमरनाथ एक समय सारे सीलोन में प्रसिद्ध व्यापारी गिने जाते थे, और व्यापारी लोग जिनसे सलाह लेने के लिए तरसते थे, वही अमरनाथ इस समय कैसी अवस्था में है! कोई उनसे मिलने भी नहीं आता!

किशोरनाथ एक दिन अपने आफिस में बैठा कार्य देख रहा था। अकस्मात् मृणालिनी भी उसी स्थान में आ गयी और एक कुर्सी खींचकर बैठ गयी। उसने किशोर से कहा—क्यों भैया, पिताजी की कैसी अवस्था है? काम-काज की भी दशा अच्छी नहीं है, तुम भी चिन्ता से व्याकुल रहते हो, यह क्या है?

किशोरनाथ—बहन, कुछ न पूछो, पिताजी की अवस्था तो तुम देख ही रही हो। काम-काज की अवस्था भी अत्यन्त शोचनीय हो रही है। पचास लाख रुपये के लगभग बाजार का देना है; और आफिस का रुपया सब बाजार में फँस गया है, जो कि काम देखे-भाले बिना पिताजी की अस्वस्थता के कारण दब-सा गया है। इसी सोच में बैठा हुआ हूँ कि ईश्वर क्या करेंगे!

मृणालिनी भयातुरा हो गयी। उसके नेत्रों से आँसुओं की धारा

बहने लगी। किशोर उसे समझाने लगा; फिर बोला--केवल एक ईमानदार कर्मचारी अगर काम-काज की देख-भाल किया करता, तो यह अवस्था न होती। आज यदि मदन होता, तो हमलोगों की यह दशा न होती।

मदन का नाम सुनते ही मृणालिनी कुछ विवर्ण हो गयी और उसकी आँखों में आँसू भर आये। इतने में दरवान ने आकर कहा--सरकार, एक रजिस्ट्री चिट्ठी मृणालिनी देवी के नाम से आयी है, डाकिया बाहर खड़ा है।

किशोर ने कहा--बुला लाओ।

किशोर ने वह रजिस्ट्री लेकर खोली। उसमें एक पत्र और एक स्टाम्प का कागज था! देखकर किशोर ने मृणालिनी के आगे फेक दिया! मृणालिनी ने फिर वह पत्र किशोर के हाथ में देकर पढ़ने के लिये कहा। किशोर पढ़ने लगा--

"मृणालिनी!

आज मै तुमको पत्र लिख रहा हूँ। आशा है कि तुम इसे ध्यान देकर पढ़ोगी। मै एक अनजाने स्थान का रहने वाला कंगाल के भेष में तुमसे मिला और तुम्हारे परिवार में पालित हुआ। तुम्हारे पिता ने मुझे आश्रय दिया, और मै सुख से तुम्हारा मुख देखकर दिन बिताने लगा। पर दैव को वह भी ठीक न जँचा! अच्छा, जैसी उसकी इच्छा! पर मै तुम्हारे परिवार को सदा स्नेह की दृष्टि से देखता हूँ। बाबू अमरनाथ के कहने-सुनने का मुझे कुछ ध्यान भी नहीं है, मै उसे आशीर्वाद समझता हूँ। मेरे चित्त में उसका तनिक भी ध्यान नहीं है, पर केवल पश्चात्ताप यह है कि मै उनसे बिना कहे-सुने चला आया। अच्छा, इसके लिए उनसे क्षमा माँग लेना और भाई किशोरनाथ से भी मेरा यथोचित अभिवादन कह देना।

अब कुछ आवश्यक बाते मै लिखता हूँ, उन्हें ध्यान से पढ़ो। जहाँ तक सम्भव है, उनके करने में तुम आगा-पीछा न करोगी--यह मुझे विश्वास है। मुझे तुम्हारे परिवार की दशा अच्छी तरह विदित है, मै उसे लिखकर तुम्हारा दुःख नहीं बढ़ाना चाहता। सुनो, यह एक 'बिल'

है जिसमे मैने अपनी सब सीलोन की सम्पत्ति तुम्हारे नाम लिख दी है। वह तुम्हारी ही है, उसे लेने में तुमको कुछ संकोच न करना चाहिये। वह सब तुम्हारे ही रुपये का लाभ है। जो धन मै वेतन में पाता था, वही मूल कारण है। अस्तु, यह मूलधन, लाभ और ब्याज-सहित, तुमको लौटा दिया जाता है। इसे अवश्य स्वीकार करना, और स्वीकार करो या न करो, अब सिवा तुम्हारे इसका स्वामी कौन है? क्योंकि मै भारतवर्ष से जिस रूप मे आया था, उसी रूप में लौटा जा रहा हूँ। मै इस पत्र को लिखकर तब भेजता हूँ, जब घर से निकलकर जहाज को रवाना हो चुका हूँ। अब तुमसे भेंट भी नहीं हो सकती। तुम यदि आओ भी, तो उस समय मै जहाज पर होऊँगा। तुमसे मेरी केवल यही प्रार्थना है कि 'तुम मुझे भूल जाना'। —मदन"

यह पत्र पढ़ते ही मृणालिनी की और किशोरनाथ की अवस्था दूसरी ही हो गयी। मृणालिनी ने कातर स्वर से कहा—भैया, क्या समुद्र-तट तक चल सकते हो?

किशोरनाथ ने खड़े होकर कहा—अवश्य!

बस तुरन्त ही एक गाड़ी पर सवार होकर दोनों समुद्र-तट की ओर चले। ज्योंही वे पहुँचे, त्योंही जहाज तट छोड़ चुका था! उस समय व्याकुल होकर मृणालिनी की ऑखे किसी को खोज रही थीं। किन्तु अधिक खोज नहीं करनी पड़ी।

किशोर और मृणालिनी दोनों ने देखा कि गेरुए रंग का कपड़ा पहिने हुए एक व्यक्ति दोनों को हाथ जोड़े हुए जहाज पर खड़ा है, और जहाज शीघ्रता के साथ समुद्र के बीच में चला जा रहा है!

मृणालिनी ने देखा, [illegible] में अगाध समुद्र है!